राजपूताना एवं अन्य विश्वविद्यालयों में, बी० ए० के पाठ्य-क्रम में निर्धारि
केशव कृत 'रामचन्द्रिका' से संकलित।

केशव-चन्द्रिका प्रसार

सम्पादक एवं व्याख्याकार

गुलजारीलाल जैन एम० ए०

प्राध्यापक हिन्दी विभाग,

राजर्षि कॉलेज, अलवर।

प्रकाशक

प्रभा प्रकाशन मन्दिर

प्रमुख विक्रेता

स्टूडैन्टस बुक डिपो

हॉप सर्कस, अलवर।

प्रथमावृत्ति—१९५७] [मूल्य २)

निष्कलंक चन्द्रमा के समान बनाकर सर्वत्र उसकी रक्षा करते हैं तथा सम्मुख (अनुकूल) होते ही संकट की बेड़ियों को तोड़ देते हैं। गणेशजी के इन विशेषताओं से युक्त होने के कारण, दसों दिशाओं के लोग उनके सुखापेक्षी अर्थात् कृपाकांक्षी बने रहते हैं।

अलंकारः—उपमा, परिकरांकुर।

सरस्वती-वंदना

दंडक—बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहो धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।
भावी, भूत, वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहू न बखानी काहू पै गई।
वर्णे पति चारि मुख, पूत वर्णे पाच मुख,
नाती वर्णे षट मुख, तदपि नई नई॥ २॥

शब्दार्थ—बानी=सरस्वती। उदार=महान्। हारे=थके। केहूँ=किसी प्रकार भी। भावी=भविष्य। भूत=बीता हुआ। तदपि=तोभी।

भावार्थ—जग की स्वामिनी सरस्वती की उदारता का वर्णन कर सके, कहो तो भला ऐसी महान बुद्धि ससार में किसकी हुई है। देवता, प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष, बड़े बड़े ऋषि और महान तपस्वी लोग सरस्वती की उदारता का वर्णन कर-करके थक गए किन्तु कोई भी पूरी तरह उसका वर्णन न कर सका। ससार के भूतकाल के लोग उसका वर्णन कर चुके, वर्तमान के कर रहे हैं तथा भविष्य में लोग करेंगे, तो भी (केशवदास कहते क) उसकी पूरी प्रशंसा किसी प्रकार भी किसी के द्वारा न हो सकी न हो सकेगी। सरस्वती के पति (ब्रह्मा) चार मुखों से, पुत्र ( ) पाँच मुखों से और नाती (कार्तिकेय) छः मुखों से उनकी

उदारता का वर्णन करते है तो भी कुछ न कुछ नवीन उदारता उनको कहने के लिए शेष रह ही जाती है, अर्थात् जब सरस्वती के अत्यन्त निकट सम्बन्धी भी जो उनकी उदारता को भली भाँति जानते हैं, उसका पूरी तरह वर्णन नहीं कर सकते, तब भला संसार के अन्य साधारण प्राणियों की तो बात ही क्या है कि उनकी उदारता का वर्णन कर सकें।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

राम-वन्दना

दण्डक—पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत, जिन्हे दरसन समुझैं न,
'नेति नेति' कहै बेद छाँडि आन युक्ति को।
जानि यह केशौदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, गुणदेहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नामदेहि मुक्ति को॥ ३॥

शब्दार्थ—पूरण=सम्पूर्ण। दर्शन=षट्शास्त्र (दार्शनिक अर्थात् ज्ञानी लोग)। नेति नेति=न इति न इति। आन=अन्य। अनुदिन=प्रतिदिन। पुनरुक्ति=बार बार दोहराना। अणिमा=वह सिद्धि जिसके द्वारा छोटे से छोटा रूप धारण किया जा सकता है। गरिमा=वह सिद्धी जिससे भारी से भारी बना जा सकता है। महिमा=वह सिद्धि जिससे बड़ा से बड़ा रूप धर सकते हैं। मुक्ति=जन्म मरण से छुटकारा।

भावार्थ—वे राम जिन्हें सम्पूर्ण पुराण (ग्रंथ) और प्राचीन लोग अन्य सब कथन छोड़कर केवल सब प्रकार पूर्ण बतलाते हैं और जिन्हें (निर्गुण रूप में) षट्शास्त्र के ज्ञाता ज्ञानी लोग भी समझ नहीं पाते वे ही राम अपने भक्तों को (सगुण रूप में) प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। वेद भी

जिसका वर्णन करते समय अन्य प्रकार से सहना छोड़कर, न हानि न
रह कर अपनी प्रशंसा प्राप्त करते है, इसी बात को जानकर केशव
पुनरुक्ति (जिसे काव्य में दोष माना गया है) की चिन्ता न करके प्रति
राम राम रटते रहते हैं। उस राम का रूप निरन्तर अणिमा सिद्धि प्र
करने वाला है, उनके गुण कथन से गरिमा सिद्धि प्राप्त होती है, उ
भक्ति महिमा सिद्धि प्रदायिनी है और उसका नाम जपने से मुक्ति —
जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त होता है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

कवि वंश-परिचय

सुगीत—सनाढ्य जाति गुनाढ्य हैं जगसिद्ध सुद्ध सुभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध है महि मिश्र पंडितराव॥
गनेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध॥ ४।

शब्दार्थ—गुणाढ्य=गुणवान। बुध=पण्डित। अगाध=अथ
अशेष=सम्पूर्ण। साध=उत्तम।

भावार्थ—सरल है।

राम-महिमा

षट्पद—बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीन्हों।
मारि न मार्‌यो शत्रु क्रोध मन बृथा न कीन्हों।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी।
दान सत्य सम्मान सुयश दिसी विदिशा ओपी।
मन लोभ मोह मद काम वश भये न केशवदास भणि।
सोई परब्रह्म श्री राम हैं अवतारी अवतार मणि ॥५॥ *

शब्दार्थः—जुरि=भिड़कर। मुरे=पिछे हटे। लीक=परम्परा। लोपी=
ओपी=प्रकाशित की। भणि=कहते है।

भावार्थ—जो बात एक बार कहदी उसके विपरीत फिर कोई बात नहीं कही। *जिसे एक बार दिया उसे (इतना दे दिया कि) फिर कुछ भी* देने की आवश्यकता न रही शत्रु को एक ही बार इस प्रकार मारा (मिटा दिया) कि उसे फिर मारने की आवश्यकता ही न रही, और मनमें व्यर्थ कभी क्रोध नहीं लाए। एक बार युद्ध भूमि में डटकर कभी पीठ नहीं फेरी और लोक की रीति को कभी मेटा नहीं। उनके दान, उनके सत्य, और उनके सम्मान के यश से सारी दिशा-विदिशाएँ प्रकाशित हो रही हैं। केशव-दास कहते हैं कि जिनका मन लोभ, मोह, अहंकार और कामादि के वश में नहीं हुआ, वे *श्रीराम साक्षात् परब्रह्म तथा अवतार धारण किए हुए* सूर्यों में शिरोमणि हैं।

चतुष्पदी—जिनको यश-हंसा जगत प्रशंसा मुनिजन मानस रंता।
लोचन अनुरूपनि स्याम-स्वरूपनि अंजन अंजित संता।
कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत विलम्ब न लागै।
तिनके गुण कहिहौं, सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—मानस = १. मन २. मान सरोवर। रंता = अनुरक्त। अनुरूपनि = अनुकूल आकार। अंजित = आँजकर।

भावार्थ—जिनका यशरूपी हंस संसार भर में प्रशंसित है तथा जो मुनियों के मन रूपी मान सरोवर का प्रेमी है और नेत्रों के लिए अनुकूल सिद्ध होने वाले जिनके श्यामल स्वरूपरूपी अंजन को आँज कर सन्त लोग अविलम्ब त्रिकालदर्शी और निर्गुण का स्पर्श करने वाले हो जाते हैं, (कवि कहता है कि) मैं उन्हीं राम का गुण कथन करूँगा जिससे सर्व सुख प्राप्त कर सकूँ और अनेक जन्मों के संचित पापों से मुक्त हो सकूँ।

अलंकार—रूपक।

कथारम्भ

दोहा—जागत जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहु छन्द ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—जगति = प्रकाशित होती है । एकरूप = सदा एकसी। स्वच्छन्द = बिना किसी के सहारे । चन्द्रिका = चाँदनी (कीर्ति)

भावार्थ:—जिसकी ज्योति सदैव एकसी तथा बिना किसी के सहारे सारे संसार में जगमगाती रहती है, उस राम रूपी चन्द्रमा की चाँदनी (यश) का अब मैं अनेक प्रकार के छन्दों में वर्णन करता हूँ ।

रोला—शुभ सूरज-कुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति ।
तिनके सुत भये चारि चतुर चितचारु चारुमति ॥
रामचंद्र भुवचंद्र भरत भारत-भुव-भूषण ।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण ॥८॥

शब्दार्थ:—शुभ = अच्छे । कलश = शिरोमणि । चारु = सुन्दर । भुव चन्द्र = पृथ्वी के चन्द्रमा । भारत भुव = भारतवर्ष । दीह = बड़े । दूषण = संहारक ।

भावार्थ:—सरल है । अलंकार:—रूपक ।

घत्ता:—सरयू सरिता तट नगर बसै अवधनाम यश-धाम धर ।
अघ ओघ-विनाशी सब पुरवासी अमरलोक मानहुँ नगर ॥९॥

शब्दार्थ:—यशधाम = यश का घर, प्रसिद्ध । धर = धरा, पृथ्वी । अघओघ = पापों का समूह । अमरलोक = देवलोक ।

भावार्थ:—सरल है ।

विश्वामित्र-आगमन

षट्पद—गाधिराज को पुत्र, साधि सब मित्र शत्रु बल ।
दान कृपान विधान वश्य कीन्हो भुवमंडल ।
कै मन अपने हाथ जीति जग इंद्रियगन अति ।
तप बल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति ।
तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल अतीतागतनि गुनि ।
तहँ अद्भुत गति पगु धारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि ॥१०॥

शब्दार्थ —साधि = वश में करके। कृपान विधान = युद्ध से। वश्य =
त। अतीनागतनि = (अतीत + आगत + नि) बीता हुआ और आने
दोनों कालों को। अद्भुत गति = शीघ्रता पूर्वक। पशु धारियो =
:।

भावार्थ—राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने अपने सम्पूर्ण मित्रो
शत्रुओ के बल को क्रमश कुछ देकर और युद्ध करके अपने काबू में
मारे पृथ्वीमण्डल को अपने आधीन कर लिया था। यही नही उन्होंने
या की शक्ति से अपने मन एव अत्यन्त चचल इन्द्रियो पर भी विजय
। करली थी और तपस्या की शक्ति से ही उन्होंने बिना अपने शरीर
त्याग किए ही क्षत्रिय से ब्रह्मऋषि के गौरव को प्राप्त कर लिया था।
वदास कहते है कि पवित्रता प्राप्त सुमति वाले विश्वामित्र ऋषि
हुए और आने वाले काल की गणना कर (कि राम कितने बडे हो
हैं और धनुर्भङ्ग एवं रावण वध आदि कार्यो द्वारा कितने समय में
ो का भार उतार सकेंगे) शीघ्रता पूर्वक अयोध्या मे पधारे।

सरयू-वर्णन

आये सरयू सरित तीर। तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर।
निरखि निरखि द्युति गति गँभीर। कछु वरणन लागे सुमति धीर ॥११॥

शब्दार्थ —अमल = मल रहित,स्वच्छ। द्युति = कान्ति। गति =
ह। गम्भीर = गहराई पूर्ण। सुमतिधीर = सुन्दर और संयत बुद्धिवाले
नि विश्वामित्र।

भावार्थ —सरल है।

न निपट कुटिल गति यदपि आप। तउ देत शुद्ध गति छुवत आप।
ऽ आपुन अध अध गति चलति। फलपतितन कहँ ऊरध फलति ॥१२॥

शब्दार्थ;—आप = स्वय। शुद्धगति = सद्गति। आप = जल। अध-
= नीचे की ओर। पतितन कहँ = पापियों के लिए। ऊरध = उच्च।

शब्दार्थ —दीह दीह = बडे बडे । दिग्गजन = दिशाओं के हाथी । कुमार = बच्चे (दिग्गजो के) । दिग्पालन = दिशाओ के देवता । उपहार = भेंट ।

भावार्थ —(अयोध्या की गजशालाओ के हाथी ऐसे प्रतीत होते हैं) मानो वे बडे बडे दिग्गजो के बच्चे हो और दिशाओ के देवताओ ने उन्हे राजा दशरथ को भेंट में दिया हो ।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा ।

बाग वर्णन

अरिल्ल —देखि बाग अनुराग उपज्जिय । बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय
राजति रति की सखी सुवेषनि । मनहुँ बहति मनमथ सदेशनि ॥१६॥

शब्दार्थ —उपज्जिय = उत्पन्न होता है । कलध्वनि = मधुर स्वर मे । सज्जिय = शोभित होती है । सुवेषनि = सुन्दर । बहति = पहुँचा रही है । मनमथ = कामदेव ।

भावार्थ —(अयोध्या के) बाग को देखकर (दर्शकों के मन मे सहज ही) प्रेम उत्पन्न हो जाता है । (वहाँ) कोयल मधुर स्वर मे बोलती हुई सुशोभित होती है और अपने सुन्दर वेष के कारण ऐसी प्रतीत होती है जैसे रति की सखि हो और कामदेव के सन्देश को लोगो तक पहुँचा रही हो ।

अलंकार.—उत्प्रेक्षा ।

फूलि फूलि तरु फूल बढावत । मोदत महामोद उपजावत ।
उडत पराग न चित्त उडावत । भ्रमर भ्रमत नहि जीव भ्रमावत ॥१७॥

शब्दार्थ —फूल = उत्फुल्लता, हर्ष । मोदत = महकते हैं । मोद = आनन्द । उडावत = उडते हैं । जीव = प्राण । भ्रमावत = फिरते है ।

भावार्थ —वृक्षो का समूह विकसित हो-होकर (फूल-फूलकर) उद्यान में भ्रमण करने वालो का हर्ष बढाता है और अपनी सुगन्धि को प्रसरित

रके उनके हृदय में उल्लास की वृद्धि करता है। उद्यान में फू-
लों का पराग नहीं उड़ रहा अपितु (वहां भ्रमण करने वाले) लोगों
का चित्त ही उड़ रहा है और (ये) भ्रमर नहीं हैं जो भ्रमण कर रहे हैं
अपितु लोगों के प्राण ही हैं जो इधर उधर मंडरा रहे हैं।

अलंकार —शुद्धापह्नुति।

तुलक —सुभ सर सोभैं, मुनि मन लोभैं। सरसिज फूले, अलि रस भूले।
जल चर डोलैं, बहु खग बोलैं। बरनि न जाहीं, उर उरझाहीं ॥१९॥

शब्दार्थ —सुभ = सुन्दर। सर = सरोवर। सरसिज = कमल। अलि = भ्रमर। रस = पुष्परस। डोलैं = विचरण करते हैं। उरझाहीं = आकृष्ट कर लेते हैं।

भावार्थ —सरल है।

अवधपुरी-गमन

चौबोला:—संग लिये ऋषि शिष्यन घने। पावक से तप तेजनि सने।
देखत सरिता उपवन भले। देखन अवधपुरी कहँ चले ॥१८॥

शब्दार्थ:—ऋषि = विश्वामित्र जी। घने = अनेक। पावक से = अग्नि के समान। तप तेजनि सने = तपस्या के तेज से युक्त।

भावार्थ.—सरल है।

अवधपुरी-वर्णन

मधुभार.—ऊँचे अवास। बहु ध्वज प्रकास।
सोभा विलास। सोभै प्रकाश ॥ २० ॥

शब्दार्थ —अवास = (आवास) घर। ध्वज=पताकाएं। सोभाविलास= शोभा (सजावट) की वस्तुएं।

भावार्थ —सरल है।

आभीर—अति सुन्दर अति साधु।
थिर न रहत पल आधु।
परम तपोमय मानि।
दण्डधारिणी जानि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—साधु = सीधी। थिर = स्थिर। आधु = आधा। तपोमय = तपस्विनी।

भावार्थ—(पताकाएँ) अत्यन्त सुन्दर और बहुत सीधी हैं, परन्तु ये आधा पल भी स्थिर नहीं रहती। (इन पताकाओं को) दण्ड (बाँस) धारण किए हुए होने के कारण परम तपस्विनियों के समान मानो (तपस्वी दण्ड धारण करते हैं तथा पताकाओं के भी दण्ड (बाँस) है)।

हरिगीतः—शुभ द्रोण गिरि गण सिखर
ऊपर उदित ओषधि सी गनौ।
बहु वायु वश वारिद बहोरहि
अरुझ दामिनि द्युति मनौ।
अति किधौं रुचिर प्रताप
पावक प्रगट सुरपुर को चली।
यह किधौं सरित सुदेस मेरी
करी दिवि खेलत भली ॥ २२ ॥ ●

शब्दार्थ—शुभ = सुन्दर। सिखर = चोटी। गनौ = समझो। औषधि = जड़ी-बूटी। वारिद = बादल। बहोरहि = लौटा रही है। प्रताप पावक = रघुवंशियों के प्रताप की अग्नि। सरित = नदी। सुदेस = सुन्दर। मेरी करी = मेरे द्वारा बनाई हुई (कौशिकी गंगा)। दिवि = आकाश।

भावार्थ—(अयोध्या की अट्टालिकाओं पर विविध रंगों के पताका-पटों को फहराते देख कर विश्वामित्र उनका वर्णन करते हैं) मानो द्रोणाचल पर्वत के शिखर पर सुन्दर जड़ी बूटियाँ चमक रही हैं अथवा (पताका-पटों के

हुए होने के कारण भगवान विष्णु के सदृश (श्याम वर्ण के) प्रतीत होते हैं। बहुत से घरों में अनेक प्रकार के विचित्र चित्र बने हुए हैं जिन्हें देखकर ऐसा लगता है कि मानों विधाता ने सम्पूर्ण संसार को देखने के लिए विचार पूर्वक किसी उज्ज्वल दर्पण का निर्माण किया हो।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा।

रोलाः— मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में ॥२७॥ *

शब्दार्थः—मूलन=वृक्षों की जड़ें। अधोगति=नीचे की ओर गति। हुतासन=अग्नि। एकै=एकमात्र। मलिनाइय=मैलापन। दुर्गन=गढ़ किले। कुटिलगति=टेढ़ीचाल। श्रीफल=बेल का फल।

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि अयोध्या में किसी की अधोगति नहीं है, यदि किसी की अधोगति है भी तो केवल मात्र वृक्षों की जड़ों की है। साथ ही उस नगर में कहीं मैलापन (गन्दगी) नहीं है, अगर कहीं है तो केवल होम की अग्नि से उठे हुए धुआँ का ही है। वहाँ दुर्गति भी किसी की नहीं है, है तो केवल दुर्गों की ही है (दुर्गों के रास्ते बड़े कठिन हैं) चाल भी वहाँ किसी की टेढ़ी नहीं है और यदि है तो केवल सरिताओं की। अयोध्या मे श्रीफल (धन) की भी अभिलाषा किसी के हृदय में नहीं है (सभी पूर्ण धनी हैं), यदि किसी को श्रीफल (बेल का फल) की अभिलाषा है तो केवल कवियो के हृदय में है (क्योंकि कविलोग स्त्रियो के कुचों की उपमा देने में श्रीफल शब्द का प्रयोग करते है)

अलंकारः—परिसंख्या।

दोहा—अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी न नारि।
मन मोह्यो ऋषि राज को, अद्भुत नगर निहारि ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—चलदलै = पीपल के पत्ते। विधवा = (१) पति विहीना (२) धवा नामक वृक्ष से हीन। बनी = वाटिका

भावार्थ— जहाँ कोई चंचल प्रकृति का प्राणी नहीं है, केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं और जहाँ केवल वाटिकाएँ ही धवा नाम के वृक्ष से रहित हैं, नारियाँ विधवा नहीं हैं। ऐसे अद्भुत नगर (अयोध्या) को देख कर ऋषिराज विश्वामित्र का मन मोहित हो गया।

अलंकार—परिसंख्या।

तरोटा— नागर नगर अपार महामोहतम मित्र से।
तृष्णालता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—नागर = चतुर। महामोहतम = मोह के घने अन्धकार के लिए। मित्र से = सूर्य के समान।

भावार्थ—उस नगर में ऐसे असंख्य चतुर प्राणी हैं जो मोह के घने अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान हैं और जो तृष्णा रूपी लता को काटने के लिए कुठार के समान और लोभ के समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य ऋषि के समान हैं।

अलंकार—रूपक और उल्लेख का संकर।

दोहा—विश्वामित्र पवित्र मुनि, केशव बुद्धि उदार।
देखत शोभा नगर की, गए राज दरबार ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—पवित्र = पवित्र हृदय वाले।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि पवित्र हृदय और उदार बुद्धि वाले विश्वामित्र ऋषि (अयोध्या) नगर की शोभा को देखते हुए राजा (दशरथ) के दरबार में आए।

मालती—तहँ दरबारी, सब सुखकारी।
कृत युग कैसे, जनु जन बैसे ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—दरबारी = सभासद। बैसे = बैठे हैं।

भावार्थ.—यहाँ सबों को (अपने शासन कार्य से) सुख देने वाले राजकर्मचारी लोग अपने अपने स्थानों पर इस प्रकार बैठे थे मानो मनु के लोग हों।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा।

मदन मल्लिका—देश देश के नरेश। शोभिजैं सबै सुवेश।
जानिये न आदि अन्त। कौन दास कौन संत ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ:—सुवेश = सुन्दर वेश में। आदि = प्रधान व्यक्ति। अन्त = सभा का सबसे छोटा सभासद। सन्त = स्वामी।

भावार्थ:—सरल है।

दोहा:—शोभित बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दशरथ लसैं, देव देव अनुरूप ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—लसैं = सुशोभित हैं। देव देव = इन्द्र। अनुरूप = समान।
भावार्थ:—सरल है।

विश्वामित्र का स्वागत

दोहा:—देखि तिन्हैं तब दूर तैं, गुदरानो प्रतिहार।
आये विश्वामित्रजू, जनु दूजो करतार ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ:—तिन्हे = विश्वामित्र को। गुदरानो = निवेदन किया। प्रतिहार = द्वारपाल। दूजो = दूसरा। करतार = ब्रह्मा।

दोहा:—उठि दौरे नृप सुनत ही, जाइ गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन, ज्यौं सुरगुरु सुरराइ ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ:—सुरगुरु = वृहस्पति। सुरराइ = इन्द्र।

रठा—सभा मध्य बैताल, ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो।
केशव बुद्धि विशाल, सुन्दर सूरो भूप सो ॥ ३६ ॥ #

शब्दार्थ –वैताल = भाट । पढ़ि उठ्यो = बोल उठा । सूरो = शूरवीर ।

भावार्थ–केशव कहते हैं कि उसी समय (विश्वामित्र के आते ही) विशाल बुद्धि और सुन्दर शरीर वाला, राजा के समान शूरवीर भाट सभा के बीच बोल उठा ।

वैताल घनाक्षरी–विधि के समान हैं बिमानीकृत राजहंस,
बिविध बिबुध युत मेरु सो अचल है ।
दीपति दिपति अति सातो दीपे दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है,
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति,
छनदान प्रिय किधौ सूरज अमल है ।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भागीरथ-पथगामी गंगा कैसो जल है ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ–विधि = ब्रह्मा । विमानीकृत = विमान बनाए हुए हैं, अधीन किए हुए हैं । राजहंस = १ मराल पक्षी २ राजाओं के प्राण अर्थात् राजा । बिबुध = १ देवता, २ पण्डित । मेरु सो अचल = सुमेरु पर्वत के समान स्थिर । दीपति = दीप्ति, प्रकाश । दिपति = प्रकाशित होती है । दीपियतु = प्रकाशित हो जाते हैं । सुदक्षिणा = १ राजा दिलीप की स्त्री २ अच्छी दक्षिणा । उजागर = प्रत्यक्ष हो, प्रसिद्ध । की = अथवा । बाहिनी = १ सेना २ नदी । छन (क्षण) = आनन्द उत्सव । छनदानप्रिय = १ आनन्द देना प्रिय है जिसको, २ प्रतिक्षण दान देना है प्रिय जिसको । अमल = उज्ज्वल । राजै = राज करते हैं । भागीरथ पथगामी = भागीरथ के पथ पर चलने वाला, भागीरथ की रीति नीति का अनुसरण करने वाला । कैसो = कैसा ।

भावार्थ–राजा दशरथ ब्रह्मा के समान हैं, क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्मा राजहंस पर सवारी करते हैं उसी प्रकार राजा दशरथ भी (अपने अधीनस्थ)

राजाओं के द्रुमों (प्रान्तों) पर आरूढ़ हो रहे हैं (राजाओं के प्रान्तों छाये हुए हैं), और राजा दशरथ सुमेरु पर्वत के समान हैं, क्योंकि जिस प्रकार सुमेरु पर्वत पर अनेक देवता रहते हैं उसी प्रकार राजा दशरथ के यहाँ भी अनेक विद्वान रहते हैं। राजा दशरथ के प्रताप की ज्योति इतनी अधिक है कि उसके प्रकाश से सातों द्वीप प्रकाशित हो रहे हैं। दशरथ मानो दूसरे राजा दिलीप हैं, क्योंकि जिस प्रकार राजा दिलीप के पास उनकी पत्नी सुदक्षिणा की शक्ति थी (सुदक्षिणा अत्यन्त बुद्धिमती थी), उसी प्रकार राजा दशरथ के पास भी सुन्दर दक्षिणा देने की शक्ति है; अथवा राजा दशरथ प्रत्यक्ष ही सागर हैं, क्योंकि जिस प्रकार सागर बहुत सी नदियों का स्वामी होता है, उसी प्रकार राजा दशरथ बहुत सी सेनाओं के स्वामी हैं। अथवा राजा दशरथ उज्ज्वल सूर्य के समान हैं, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य को अपने प्रकाश द्वारा छनदान (आनन्द) प्रिय है, उसी प्रकार राजा दशरथ को छनदान (प्रतिक्षण दान देना) प्रिय है। सब प्रकार से समर्थ राजा दशरथ गंगा के जल के समान सुशोभित होते हैं, क्योंकि जैसे गंगा का जल भागीरथ के द्वारा दिखाये हुए मार्ग का अनुसरण कर रहा है, वैसे ही राजा दशरथ भी भागीरथ आदि पूर्वजों की रीति नीति का अनुगमन करने वाले हैं।

अलंकार:—रूपक, उपमा, सन्देह और श्लेष से पुष्ट उल्लेख।

दोहा:—यद्यपि ईंधन जरि गये, अरिगण केशवदास।
तदपिप्रतापानलन के, पल पल बढ़त प्रकास॥ ३८॥ *

शब्दार्थ:—जरि गये = जल गए। प्रतापानलन = प्रताप की अग्नि।

भावार्थ:—केशवदास कहते हैं कि यद्यपि राजा दशरथ के शत्रुओं का समूह रूपी ईंधन जल चुका है तो भी उनकी प्रताप रूपी अग्नि का प्रकाश प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है।

अलंकार—प्रमुख विभावना, अंगांगभूत रूपक।

तोमर—बहु भांति पूजि सुराइ । कर जोरिकै परि पाइ ।
हँसि कै कह्यो ऋषि मित्र । अब बैठु राज पवित्र ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—सुराइ = सुन्दर राजा ने (दशरथ ने) । पाइ = चरणों में
ऋषिमित्र = ऋषियों के सूर्य के समान ऋषि श्रेष्ठ । राज पवित्र = पवित्र
राजा ।

भावार्थ—सरल है ।

(पुनि) तोमर—मुनि हास मानस-हंस । रघुवंश के अवतंस ।
मन मांह जो धनि नेहु । सब वस्तु मांगहि देहु ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—हास मानस हंस = हास के मानस (सरोवर) में हंस के समान । अवतंस = सूर्य ।

भावार्थ:—सरल है ।

अमृतगीत—सुमति महामुनि सुनिये । तन धन कै मन गुनिये ।
मन मंह होय सु कहिये । धनि सु जु आपुन लहिये ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ:—कै = अथवा । गुनिये = विचार कीजिए । धनि = धन्य है ।
सु = सो । जु = जो । आपुन = आप । लहिये = ग्रहण करें ।

भावार्थ:—(दशरथ कथन) हे सुन्दर बुद्धि वाले महामुनि, सुनो, हमारे पास तन, धन और मन है । इनमें से जो वस्तु आप ग्रहण करना चाहें, उसे मन में विचार कर कहें । वह वस्तु धन्य है जिसे आप ग्रहण करें ।

विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को माँगना

दोधक:—राम गये जब ते बन माहीं । राकस बैर करें बहुधाहीं ।
राजकुमार हमें नृप दीजै । तो परिपूरण यज्ञ करीजै ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ:—राम = परशुराम । राकस = राक्षस । करीजै = करें ।

भावार्थ:—सरल है ।

सोरठाः—यह बात सुनी नृपनाथ जबै। सर से लगे आखर चित्त सबै।
मुख तें कछु बात न जात कही। अपराध बिना ऋषि देह दही॥४३॥

शब्दार्थ—सर से = बाण के समान । आखर = अक्षर । दही = जलाई ।

भावार्थः—सरल है ।

(राजा):—अति कोमल केशव बालकता। बहु दुष्कर राक्षस घालकता।
हमहीं चलि हैं ऋषि संग अबै। सजि सैन चलै चतुरंग सबै॥४४॥

शब्दार्थः—बहु दुष्कर = अत्यन्त कठिन । राक्षस-घालकता = राक्षसों को मारना ।

भावार्थः—सरल है ।

विश्वामित्रः—जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिनी रिपुनन्दन ।
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयन्दन ?
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि ।
तिन बानन बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि ।
नृपनाथ-नाथ दशरत्थ यह अकथ कथा नहिं मानिये ।
मृगराज-राज-कुल-कलश कहँ बालक वृद्ध न जानिये ॥४५॥

शब्दार्थ:—हाथन = हाथों में । रिपु-नन्दन = सिंह का बच्चा । कहा = क्या । सुख = सहज ही । लक्ष = लाखों । लक्ष = निशाना । कुँवरमनि = कुमारों में श्रेष्ठ । बाराह = सूअर । नृपनाथ-नाथ = राज-राजेश्वर । अकथ कथा = भूठा कथन । मृगराज = सिंह । राज-कुल-कलश = राजा का प्रतापी बालक । बालक वृद्ध = बालक नहीं बड़ा मानो ।

भावार्थः—(विश्वामित्र का कथन) हे राजा ! जिन अपने हाथों में सिंह का बच्चा, हठ करके आनन्दपूर्वक किसी हरिनी को मारता है, क्या उन्हीं हाथों से वह मस्त हाथियों का संहार नहीं करता (अर्थात् करता है) जिन हाथों से राजकुमारों में श्रेष्ठ राजकुमार सहज ही लाखों निशाना

ा वेधन करता है क्या उन्हीं हाथों से बाणों द्वारा यह सूकर, बाघ और
ओं को नहीं मार डालता (अर्थात् मारता है) । अत हे राज राजेश्वर
गरथ सुनो । मेरी बात को मिथ्या मत मानो कि सिंह और राजा के प्रतापी
ालक को बच्चा नहीं अपितु बड़ा (वयस्क) ही समझना चाहिए ।

विश्वामित्र.—राजन मैं तुम राज बड़े अति । मैं सुत माँगो सुदेहु महामति ।
देव सहायक हो नृप नायक । है यह कारज रामहि लायक ॥४६॥

शब्दार्थ:—राज=राजा । देव सहायक=देवताओं की सहायता करने
ाले ।

भावार्थ:—सरल है ।

राजा:—मैं जो कह्यो ऋषि देन, सो लीजिए ।
काज करो, हठभूलि न कीजिए ॥
प्राण दिये धन जाहिं दिये सब ।
केशव राम न जाहिं दिये अब ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ:—देन=देने के लिए । सु=वही । जाहिं दिये=दिये जा
ाते हैं ।

भावार्थ:—सरल है ।

(ऋषि):—राज तज्यो धन धाम तज्यो सब ।
नारि तजी, सुत सोच तज्यो सब ।
आपनपौ जो तज्यो जग बन्द है ।
सत्य न एक तज्यो हरिचन्द है ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—आपनपौ—अहंकार । जगबन्द—जगत द्वारा प्रशंसित ।

भावार्थ—सरल है ।

सुन्दरी.—राज बड़े वह साज बड़े पुर । नाम बड़े वह धाम बड़े दुर ॥
भूठे सो भूठहि बाँधन हो मन । छोड़त हो नृप सत्य सनातन ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ और भावार्थ:—सरल है ।

दोहा—जान्यौ विश्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आय।
राजा दशरथ सों कह्यो, बचन वशिष्ठ बनाय ॥ ५० ॥

शब्दार्थ:—कोप=क्रोध। वशिष्ठ=राजऋषि वशिष्ठ जी।

भावार्थ:—सरल है।

वशिष्ठ:—इनही के तपतेज यज्ञ की रक्षा करि हैं।
इनही के तप तेज सकल राक्षस बल हरि है।
इनही के तपतेज तेज बढ़ि है तन तूरन।
इनही के तपतेज होहिंगे मंगल पूरन।
कहि केशव जययुत आइ हैं इनहीं के तपतेजघर।
नृप बेगिराम लछिमन दोऊ सौंपौ विश्वामित्र कर ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ:—तपतेज=तपस्या के तेज से। तूरण=शीघ्र ही। मंगल=मांगलिक कार्य (विवाहादि) जययुत=विजयी होकर।

भावार्थ:—सरल है।

दोहा:—नृप पै वचन वशिष्ठ को, कैसे मेट्यो जाइ।
सौंप्यो विश्वामित्र कर, रामचन्द्र अकुलाइ ॥ ५२ ॥

भावार्थ—सरल है।

पंकज वाटिका:—राम चलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भये वारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहि।
केशव उठिगे भीतर भौनहि ॥ ५३ ॥

र्थ:—चलत=जाते समय। युग=दोनो। वारि=जल भर्‌
भर गए। वारिद=कमल। रोचन=लाल। सजि मौनहि=
भाव से। भौनहि=महल में।

:—सरल है।

राम-लक्ष्मण का-आश्रम-गमन

चामर–वेद मंत्र तंत्र सोधि अस्त्र शस्त्र दै भले।
रामचन्द्र लक्ष्मणै सु विप्र छिप्र लै चले।
लोभ छोभ मोह गर्व काम कामना हयी।
नींद भूख प्यास त्रास वासना सबै गयी ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ–तन्त्र = तन्त्र शास्त्र। सोधि = शुद्ध करके। अस्त्र = फेंककर प्रयोग में लाये जाने वाले हथियार। शस्त्र = हाथ में पकड़ कर प्रयोग में लाये जाने वाले हथियार। विप्र = विश्वामित्र जी। छिप्र = शीघ्र ही। छोभ = क्षोभ। हयी = नष्ट हो गई।

भावार्थ–सरल है।

दोहा–रामचन्द्र लक्ष्मण सहित, तन मन अति सुख पाई।
देख्यो विश्वामित्र को, परम तपोवन जाइ ॥ ५५ ॥

भावार्थ:—स्पष्ट है।

तपोवन–वर्णन

षट्पद–तरु तालीस तमाल ताल हिताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै।
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन ॥
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन ॥५६॥

शब्दार्थ:–तालीस = तेज पत्ते की जाति का एक वृक्ष। तमाल = एक बहुत ऊँचा सुन्दर सदा बहार वृक्ष। ताल = ताड़का वृक्ष। हिंताल = एक प्रकार का खजूर का वृक्ष। मंजुल = सुन्दर। बंजुल = अशोक। लकुच = बड़हर। केर = केला। एला = इलायची। लवंग = लौंग। पुंगीफल =

पारी । सारी = मैंना । कलित = सुन्दर । राजहंस = हंस पक्षी का एक
कार । कलहस = बतख । मयूरगन = मोरो का समूह ।

भावार्थः–बहुत सरल है ।

सुप्रिया–कहुँ द्विजगण मिलि सुख श्रुति पढही ।
कहुँ हरि हरि हर हर रट रटही ।
कहुँ मृगपति मृग शिशु पय पियही ।
कहुँ मुनिगण चितवत हरि हियही ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ–सुख = स्वाभाविक सुर से । श्रुति = वेद । मृगपति = सिंह
मृग शिशु = हिरणो के बच्चे । पय = जल (एक साथ पीते हैं) । हियही = अपने घट में ही ।

भावार्थ–स्पष्ट है ।

माराच–विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए ।
अदीयमान दुःख, सुख दीयमान जानिए ।
अदण्डमान दीन, गर्व दंडमान भेदवं ।
अपाठमान पापग्रंथ, पठमान वेदवं ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ–विचारमान = विचार करने योग्य । अर्चमान = पूजने योग्य । अदीयमान = न देने योग्य । दीयमान = देने योग्य । अदण्डमान = दण्ड न देने योग्य । दंडमान = दंड देने योग्य । भेदवं = भेद भाव रखने वाले ।
अपाठमान = न पढ़ने योग्य । पठमान = पढ़ने योग्य ।

भावार्थ–(विचारमित चरित के शासन में और कोई भी वस्तु ऐ[illegible] नहीं है जो विचार करने योग्य हो । विचार करने योग्य केवल ब्रह्म ही [illegible] और पूजने योग्य केवल देवता ही है । न देने योग्य वस्तु केवल दुःख है, [illegible] देने योग्य वस्तु केवल सुख ही है । दण्ड न देने योग्य केवल दीन [illegible] हो [illegible] और अहंकार [illegible] करने वाली ही है । [illegible]

की शिक्षा देने वाले ग्रन्थ ही न पढ़ने योग्य समझे जाते हैं तथा केवल वेद ही पठन योग्य ग्रन्थ है अर्थात् सब लोग वेद ही पढ़ते हैं।

अलंकार.–परिसंख्या।

विशेषक:–साधु कथा कथिये दिन केशवदास जहां।
निग्रह केवल है मनको दिनमान तहां।
पावन वास सदा ऋषि को सुख को बरषं।
को बरणै कवि ताहि विलोकत जी हरषं ॥ ५६

शब्दार्थ:–दिन = प्रतिदिन। निग्रह –दमन। मान १ अहंकार २ परिमाण। वास =निवास स्थान।

भावार्थ –केशवदास कहते हैं कि जहां प्रतिदिन केवल अच्छी बातों का ही कथन होता है (अन्य किसी प्रकार की वार्ता का नहीं) और जहां केवल मन का ही दमन किया जाता है तथा जहां मान (अहंकार) किसी में भी नहीं है। यदि है तो 'दिनमान' शब्द में ही नाममात्र को 'मान' शब्द का प्रयोग होता है। विश्वामित्र ऋषि के ऐसे पवित्र आश्रम में सदैव सुख की वृष्टि होती रहती है। जिस आश्रम को केवल देखने मात्र में ही जब हृदय प्रसन्न हो जाता है, भला उस आश्रम के महत्त्व का कवि क्या वर्णन करे।

अलंकार:–परिसंख्या और सम्बन्धातिशयोक्ति।

यज्ञ–रक्षण

चंचला:–रक्षिबे को यज्ञथल बैठे वीर सावधान ।
होन लागे होम के जहां तहां सबै विधान।
भीम भांति ताड़का सो भंग लागी करन आइ।
बान तानि राम पै न नारि जानि छोड़ि जाइ ॥ ६० ॥

शब्दार्थ:–रक्षिबे = रक्षा करने के लिए। विधान = क्रियाएं । भीम भांति = भयंकर रूप से। करन – करने लगी।

भावार्थः-स्पष्ट और सरल है।

सोरठाः—कर्म करति यह घोर, विप्रन को दगहूँ दिसा।
मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँड़िए ॥ ६१ ॥

दोहाः—द्विजदोषी न विचारिए, कहा पुरुष कह नारि।
राम विराम न कीजिए, वाम ताड़का तारि ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः-घोर=अत्यन्त भयंकर। विप्रन को=ब्राह्मणों को (दुःख देने के लिए)। द्विज दोषी=ब्राह्मणों का अपराधी व्यक्ति। विराम=विलम्ब। वाम=स्त्री। तारि=उद्धार करो (संहार करो)।

भावार्थः-(राम के प्रति विश्वामित्र का कथन) हे राम! ताड़का नाम की स्त्री ब्राह्मणों को सताने के लिए सर्वत्र अत्यन्त घोर कर्म करती है तथा इसमें हजार मस्त हाथियों की शक्ति है। अतः इसे नारी जानकर छोड़िये मत।

ब्राह्मणों का विरोध करने वाला, चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री, उसके मारने मे विचार नही करना चाहिए। इसलिए हे राम! आप विलम्ब मत करो। इस ताड़का नाम की स्त्री को अपने हाथ से मार कर मुक्ति प्रदान करो।

ताड़का—सुबाहु—वध

मरहट्टाः—यह सुनि गुरुबानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि।
ताड़का सँहारी दारुण भारी नारी अति बल जानि।
मारीच विडार्‌यो जलधि उतार्‌यो मार्‌यो सबल सुबाहु।
देवनि गुण परख्यो पुष्पनि बर्ख्यो हर्ख्यो अति सुरनाहु ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः-धनु-गुन-तानो=धनुष की प्रत्यंचा को खींचा। दारुण=भयंकर। विडार्‌यो=भगा दिया, खदेड़ दिया। परख्यो=परीक्षा की। हर्ख्यो=प्रसन्न हुआ। सुरनाहु=इन्द्र।

भावार्थ—सरल है।

दोहा—पूरण यज्ञ भयो जहाँ जान्यो विश्वामित्र।
धनुष यज्ञ की शुभ कथा लागे सुनन विचित्र ॥ ६४ ॥

विप्र-कथित-स्वयंवर-कथा

खडपरस को सोभिजै सभामध्य कोदण्ड।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार बरिबंड ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—खडपरस=महादेव। कोदण्ड=धनुष। शेष=शेषनाग। अशेष=सम्पूर्ण। धर=पृथ्वी। धरनहार=धारण करने वाला। बरिबंड=प्रबल, बलशाली।

भावार्थ—सभा के मध्य रखा हुआ महादेव का धनुष ऐसा सुशोभित होता है मानो जैसे सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करने वाला बलशाली शेषनाग हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सवैया]

सोभित मचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा मे सुधारि सुधाधरमडल मडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यों जनु देवसभा शुभ सीय स्वयंवर देखन आई ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—मचन की=सिंहासनो की। अवली=पंक्ति, कतार। गजदन्तमयी=हाथी दांत की बनी हुई। ईश=ब्रह्मा। सुधाधर मडल=चन्द्रमा के चारो ओर का प्रकाश का घेरा। मडि जोन्हाई=ज्योत्स्ना से सुशोभित। तामहँ=जिसके मध्य में। स्यो=सहित।

भावार्थ—(सीता के स्वयंवर स्थल मे) हाथी दांत के बने हुए, सुन्दर कान्ति से युक्त, सिंहासनो की कतार ऐसी सुशोभित हो रही है, मानो

ब्रह्मा ने ज्योत्स्ना द्वारा सुशोभित चन्द्रमा के परिवेष (घेरा) को ही पृथ्वी पर सुन्दरता पूर्वक रख दिया हो। केशव कहते हैं कि (चन्द्रमा के तारों जैसे) उन्हीं सिंहासनों पर (स्वयंवर में आए हुए) सारे राजकुमार बैठे हुए हैं, (जिनसे युक्त यह स्थान ऐसा सुशोभित होता है) मानो देवता सहित देव सभा ही सीता के सुन्दर स्वयंवर को देखने आई हो।

अलंकार:—वस्तूत्प्रेक्षा।

सोरठा - सभामध्य गुणग्राम, बंदी सुत द्वै सोभहीं।
सुमति विमति यहि नाम, राजन को वर्णन करें ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—गुणग्राम = गुणों के समूह, गुणी। वन्दी = भाट। द्वै = दो।
राजन = राजाओं।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

[सुमति]

दोहा:—को यह निरखत आपनी, पुलकित बाहु विसाल।
सुरभि स्वयंवर जनु करि, मुकुलित शाख रसाल ? ॥६८॥

शब्दार्थ:—पुलकित = रोमांचित। सुरभि स्वयंवर = स्वयंवर रूपी वसन्त ने। मुकुलित = मंजरित। रसाल = आम।

भावार्थ—(सुमति प्रश्न करता है—)यह राजा कौन है जो अपनी विशाल रोमांचित भुजा को देखता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो स्वयंवर रूपी वसन्त ऋतु ने आम की शाखा को मंजरी युक्त कर दिया हो।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा।

[विमति]

सोरठा—जेहि यश-परिमल मत्त, चंचरीक-चारण फिरत।
दिसि विदिसन अनुरक्त, सो तौ मल्लिका पीड़ नृप ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः–यश परिमल=यश रूपी सुगन्धि । चंचरीक=भ्रमर । चारण=
दीगण । मल्लिकापीड=(१)मल्लिक नामक पहाड़ी देश का राजा, (२)
मेली की माला ।

भावार्थः–(विमति का उत्तर–) जिसके यश की सुगन्धि से मग्न
कर बन्दीगण रूपी भ्रमर अनुरागयुक्त होकर दिशा विदिशाओं में घूमने
रते हैं, यह वही मल्लिक नामक पर्वत प्रदेश का राजा है ।

अलंकारः–श्लेष से इसका अर्थ चमेली की माला पर भी घटित होना
। वैसे चमेली की माला और राजा का सम अभेद रूपक है ।

[सुमति]

दोहा–जाके सुखमुख वास ते, वासित होत दिगंत ।
सो पुनि कहु यह कौन नृप, शोभित शोभ अनंत ? ॥ ७० ॥

शब्दार्थ–सुखमुख=स्वाभाविक, सहज । वासित=सुगन्धित । शोभ-
ोभा ।

भावार्थ –(सुमति का प्रश्न) जिसके शरीर की सहज सुगन्धि से
ारी दिशाएँ सुगन्धित हो रही है और जो अनन्त शोभा से सुशोभित हो
हा है, वह राजा कौन है, मुझे बताओ ।

[विमति]

सोरठा–राजराजदिगवाम, भाल लाल लोभी सदा ।
अति प्रसिद्ध जग नाम, काश्मीर को तिलक यह ॥ ७१ ॥

शब्दार्थः–राजराज=कुबेर । राज राजदिग=उत्तर दिशा । वाम=स्त्री ।
लाल=माणिक्य । तिलक=राजा ।

भावार्थ –(विमति का उत्तर) उत्तर दिशा रूपी स्त्री के ललाट के
ाणिक्य का सदैव ही लोभ रखने वाला जिसका नाम संसार में अति प्रसिद्ध
है, यह काश्मीर का राजा है ।

विशेष:-'कासमीर को तिलक' शब्द से श्लेष द्वारा इसका दूसरा अर्थ
ी ग्रहण किया जा सकता है ।

[सुमति]

दोहा:-निज प्रताप दिनकर करत, लोचन कमल प्रकाश ।
पान खात मुसकात मृदु, को यह केशव दास ॥ ७२ ॥

भावार्थ.-जो अपने प्रताप रूपी सूर्य से दर्शकों के नेत्र रूपी कमलों को
फुल्लित कर रहा है, और जो पान खाता हुआ मन्द २ मुस्करा रहा है.
ह कौन राजा है ।

अलंकार:-रूपक ।

[विमति]

सोरठा:-नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावतो ।
कटितट सुपट सुवेश, कल काँची शुभ मडई ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ:-नृप माणिक्य=राजाओं में माणिक्यवत् (अत्यन्त प्रिय) ।
देश=सुन्दर । तिय=स्त्री । कल=सुन्दर ।

भावार्थ:-जो राजाओं में माणिक्य के समान (अत्यन्त प्रिय) और
दर है तथा दक्षिण दिशा रूपी स्त्री के हृदय को अच्छा लगने वाला है
र जिसकी कमर मे सुन्दर वस्त्र सुशोभित हो रहा है वह सुन्दर काँची-
ी को मंडित करने वाला काँचीपुरी का राजा है ।

[सुमति]

दोहा:-कुंडल परसन मिस कहत, कहौ कौन यह राज ।
शम्बुशरासन गुन करौ, करनालबित आज ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ:-परसन मिस=स्पर्श करने के बहाने मे । गुण=प्रत्यंचा ।
रनालबित=कान तक खेंचना ।

भावार्थ–जो अपने कुण्डलों को स्पर्श करने के बहाने से मानो यह कह रहा है कि आज मैं शंकर के धनुष की प्रत्यंचा को अवश्य ही कान तक खींच लूँगा, यह कौन राजा है।

[विमति]

सोरठा–जानहि बुद्धि निधान, मत्स्यराज यहि राज को।
समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहिबो ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—निधान=घर, भण्डार। यहि=इस। अवगाहिबो=मन्थन करना।

भावार्थ—हे बुद्धि के भण्डार सुमति ! तुम इस राजा को मत्स्यराज (मत्स्य प्रदेश का राजा) समझो जो युद्ध को समुद्र की भाँति भली प्रकार अवगाहन करना (मथना) जानता है।

विशेष—श्लेष अलङ्कार द्वारा इसका अर्थ किसी बड़े मत्स्य (मच्छ) पर भी घटित होता है।

दोहा—अङ्गराग-रञ्जित रुचिर, भूषण-भूषित देह।
बहत विदूषक सों बढ़ू, सो पुनि को नृप येह ॥ ७६ ॥

भावार्थ—जिसका आभूषण युक्त शरीर सुन्दर केसर, चन्दनादि अङ्गरागों से आलेपित है तथा जो विदूषक से कुछ कह रहा है, वह राजा कौन है मुझे बताओ।

[विमति]

सरोठा—चन्दनचित्रतरंग, सिंधुराज यह जानिए।
बहुत वाहिनी संग, मुक्तामाल विसाल उर ॥७७॥

शब्दार्थ—चित्र=विविध। सिन्धुराज=(१) सिन्धु प्रदेश का राजा, (२) महा समुद्र। वाहिनी=(१) सेना, (२) नदियाँ।

भावार्थ— जिसके शरीर पर चन्दन की विविध तरंगें सी दीख रही हैं और जिसके साथ अनेक सेनाएँ हैं तथा जिसके विशाल वक्षस्थल पर

मोतियों की माला झूम रही है, इसे तुम सिन्धु प्रदेश का राजा जानो।

विशेष—श्लेष अलङ्कार, द्वारा इसका अर्थ समुद्र पर भी घटित हो सकता है।

दोहा—सिगरे राज समाज के, कहे गोत गुण ग्राम।
देश स्वाभाव प्रभाव अरु, कुल बल विक्रम नाम॥ ७८॥

भावार्थ—स्पष्ट और सरल है।

घनाक्षरी—पावक पवन मणिपन्नग पतग पितृ
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये है।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिन्धु,
केशव चराचर जे वेदन बताएँ हैं।
अजर अमर अज अगी औ अनगी सब,
वरणि सुनावैं ऐसे कौन गुण पाये हैं।
सीता के स्वयबर को रूप अवलोकिवे को,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं॥७९॥

शब्दार्थ—पावक=अग्नि। मणिपन्नग=बड़े बड़े मणिधारी सर्प, शेषनाग, वासुकी आदि। पतङ्ग=पक्षी। पितृ=पितृलोक के निवासी। ज्योतिवंत=सूर्य चन्द्रादि। जे=जो। अज=अजन्मा। अङ्गी=शरीरधारी। अनंगी=अशरीरी। अवलोकिवेको=देखने के लिए। विश्वरूप=विश्वभर के रूपधारी प्राणी।

भावार्थ—स्पष्ट और सरल है।

सोरठा—कह्यो विमति यह टेरि, सकल सभाहि सुनाय कै।
चहूँ ओर कर फेरि, सबही को समुझाय कै॥ ८०॥

वार्थ—स्पष्ट है।

गीतिका—कोऊ आजु राजसमाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै ।
पुनि श्रोण के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षि है ॥
वह राज होइ कि रङ्क, केशवदास सो सुख पाई है ।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाई है ॥८१॥

शब्दार्थ—कर्षिहै=खैंचेगा । श्रोण के परिमाण=कान की दूरी तक । नाई है=डालेगी ।

भावार्थ—स्पष्ट ही है ।

दोहा—नेक शरासन आसनै, तजै न केशवदास ।
उद्यम कै थाक्यो सबै, राजसमाज प्रकाश ॥८२॥

शब्दार्थ—नेक=किंचित भी । शरासन=धनुष । आसनै=स्थान को । कै=करके । प्रकाश=प्रत्यक्ष ही ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मत्तगयन्द—दिगपालन की भुवपालन की,
लोकपालन की किन मातु गई च्वै ।
कत भाँड भये उठि आसन तें,
कहि केशव शंभु शरासन को छ्वै ।
भरु काहू चढ़ायो न काहू नवायो,
न काहू उठायो न आँगरहू द्वै ।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ,
आये हैं बीर चले बनिता ह्वै ॥८३॥ *

शब्दार्थ—दिगपालन=दिशाओं के संरक्षक देवता । भुवपालन=राजालोग । किन मातुगई च्वै=माता का गर्भपात क्यों न हो गया (ऐसे शक्तिहीन लोगों को जन्म देने की अपेक्षा) । भाँड भए=अपने हाथों ही अपनी धूल कराई । नवायो=झुकाया । भो=हुआ ।

भावार्थ—स्पष्ट एवं सरल है ।

दोहा—सबही को समभयो सबन बल विक्रम परिमाण ।
सभा मध्य ताही समय आये रावण बाण ॥ ८४ ॥

नर-नारि सबै, भयभीत तबै ।
भवरज्जु यहै, सब देखि कहै ॥ ८५ ॥

रावण बाण महाबली, जानत सब संसार ।
जो दोऊ धनु करसिहैं, ताको कहा विचार ॥ ८६ ॥

भावार्थ—उक्त तीनों छन्दों का भावार्थ पूर्ण स्पष्ट है ।

[बाणासुर]

सवैया—केशव और तें और भयो, गति जानि न जाय कछू करतारो ।
सूरन के मिलिबे कहँ आयो, मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी ॥
बाढ़ि गयो बकवादि बृथा, यह भूलि, न भाट सुनावहिं गारी ।
चाप चढाय हौं कीरति कों, यह राज बर तेरी राजकुमारी ! ॥८

शब्दार्थ—और ते और भयो=कुछ से कुछ हो गया । करतारो=विधाता की । सूरन=शूर-वीर । कहँ=के लिए । अविचारी=मूर्ख बरे=बरण करे ।

भावार्थ—सरल है ।

खडित मान भयो सबको नृपमंडल हारि रह्यो जगती को ।
व्याकुल बाहु, निराकुल बुद्धि, थक्यो बल विक्रम लकपति को ॥
कोटि उपाय किये कहि केशव केहूँ न छांडत भूमि रती को ।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहिं ज्यों न चलै चित योग यती को ॥८

शब्दार्थ—जगती=संसार । निराकुल=घबडाई हुई । केहूँ=किसी प्रकार भी । रती को=किंचित भी, रत्ती भर भी । भूरि=बहुत अधिक । विभूति=वैभव, सम्पत्ति । यती=तपस्वी ।

भावार्थ—सबका मान खण्डित हो गया । संसार के सम्पूर्ण राजा हार गये । लङ्का के स्वामी रावण की भुजाएँ व्याकुल हो गई, बुद्धि बौखला

गई और उसका शारीरिक बल तथा उपाय थक गये। केशवदास कहते हैं कि (इस प्रकार) करोड़ो उपाय करने पर भी (धनुष) पृथ्वी को एक रत्ती भर भी उसी प्रकार नही छोड़ता जिस प्रकार बहुत अधिक सम्पत्ति के प्रभाव मे भी योगी का मन योग से नही डिगता।

अलंकार—उदाहरण।

मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माय।
दुहूँ भाँति असमंजसै, बाण चले सुख पाय॥ ८६॥

जब जान्यो सबको भयो, सब ही विधि व्रत भङ्ग।
धनुष धर्यो लै भवन मे, राजा जनक अनंग॥ ९०॥

शब्दार्थ—असमंजसै = अड़चन। अनग = विदेह।

भावार्थ—दोनो का स्पष्ट ही है।

रावण—मोक्हँ रोकि सकै कहु कोरे।
युद्ध जुरे यमहू कर जोरे॥
राज सभा तिनुका करि लेखौं।
देखि के राजसुता धनु देखौ॥ ९१॥

भावार्थ—सरल ही है।

[रावण]

तोटक—अब सीय लिये बिन हौ न टरौं।
कहुँ जाहुँ न तौ लगि नेम धरौं॥
जब लौ न सुनो अपने जन को।
अति आरत शब्द हते तन को॥९२॥ *

शब्दार्थ—तौ लगि = तबतक। नेमधरौं = प्रतिज्ञा करता हूँ। जन = सेवक। आरत = करुण। हते तन को = शरीर में चोट लगने का सा।

भावार्थ—(रावण कहता) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सीता को लिए बिना मैं तब तक नहीं जाऊँगा जबतक कि अपने किसी सेवक के शरीर में चोट लगने का सा अत्यन्त दुखी स्वर नहीं सुनूँगा।

[बाहरण]

मोदक—काहू कहैं सर आसुर मार्यो।
आरत शब्द अकास पुकार्यो।
रावण के वह कान पर्यो जब।
छोड़ि स्वयम्बर जात भयो तब ॥६३॥

शब्दार्थ—काहू=किसी ने। सर=बाण द्वारा। आसुर=राक्षस। आरत शब्द=दुखी स्वर से। जात भयो=चला गया।

भावार्थ—स्पष्ट है।

सवैया—ऋषिराज सुनी यह बात जहीं। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीं।
बन राम सिला दरसी जबहीं। तिय सुन्दर रूप भई तबहीं ॥६४॥

शब्दार्थ—यह बात=सीता स्वयंबर की यह कथा। जहीं=जैसे ही। तहीं=त्योंही। दरसी=देखी। तिय=स्त्री।

भावार्थ—सरल है।

ऋषि का कुमारों सहित जनकपुरी मे आगमन

दोहा—काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्री राम के, भयो मित्र उद्दोत ॥६५॥

शब्दार्थ—सगुन=शुभ सूचक घटना। पुर=नगर। पैठत=प्रवेश करते समय। मित्र=सूर्य। उद्दोत=उदित हुआ।

भावार्थ—स्पष्ट है।

सूर्योदय-वर्णन

[चौपाई]

राम—वसुराजत सूरज अरुण खरे, जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसैं, चोर चकोर चिता सो लसैं ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—राजत = सुशोभित। अरुन खरे = खूब लाल। अनुराग = प्रेम। त्रसैं = भयभीत होती है।

भावार्थ—(राम कथन) लाल सूर्य (आकाश में) खूब सुशोभित हो रहे हैं, कुछ ऐसे लगते हैं मानो वे लक्ष्मण के प्रेम से भरे हुए हैं। उस सूर्य को देखकर कुमुदिनि अपने चित्त में भयभीत होती है और चोर एवं चकोर को वह सूर्य जलती हुई चिता सा (भयप्रद) लगता है।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा।

[लक्ष्मण-कथन]

षट्पदः—अरुणगात अतिप्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय॥
परिपूरण सिंदूर पूर कैंधो मंगल घट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो माणिक मयूख पट।
कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैंधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को॥ ६७॥ *

शब्दार्थ—अरुणगात=लाल रंग वाले। पद्मिनी-प्राणनाथ=सूर्य। भय=हुए। कोकनद=लाल कमल। कोक प्रेममय=चकवे के प्रेम से युक्त। सिंदूरपूर=सिंदूर से रंगा हुआ। शक्र=इन्द्र। माणिक मयूख पट=माणिक्य की किरणों से बना हुआ वस्त्र। कै=अथवा। श्रोणित कलित=रक्त से भरा हुआ। किल=निश्चय ही। कापालिक काल=काल रूपी तांत्रिक। लाल=माणिक। दिग्भामिनि=दिशा (पूर्व) रूपी स्त्री। भाल=ललाट।

भावार्थ—(लक्ष्मण कथन) सूर्य प्रातः काल अत्यन्त रक्त वर्ण होकर उदित हुए हैं, (उनके रक्त वर्ण को देखकर लगता है) मानो वे

कमल और चकवे के प्रेम से युक्त हों (साहित्य में प्रेम का रंग लाल माना गया है); अथवा (सूर्य के रूप में) यह कोई मंगल घट है जो पूर्ण रूपेण सिंदूर से रंगा हुआ है। अथवा यह इन्द्र का छत्र है जो माणिक्य की किरणों के वस्त्र से बना है। या निश्चय ही यह काल रूपी कापालिक के हाथ में रक्त से भरा हुआ किसी का कपाल (सिर) है, अथवा यह पूर्व दिशा रूपी स्त्री के ललाट का माणिक्य है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और सन्देह।

[तोटक छंद]

पसरे कर, कुमुदिनि काज मनो।
किधौं पद्मिनि को सुख देन घनो।
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे।
जिय जानि चकोर फँदान ठगे॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—कर=किरणें। कुमुदिनि काज=कुमुदिनि को पकड़ने के लिए। पद्मिनी=कमलिनी। ऋक्ष=तारे। त्रास=भय।

भावार्थ:—सूर्य की किरणें फैली हैं, मानो कुमुदनि को पकड़ने के लिए, या कमलिनी को अत्यन्त सुख देने के लिए फैली हैं। तारे अस्त हो गए हैं सो मानो इस भय से हैं कि कहीं सूर्य की किरणों के फन्दे में न फँस जाएँ और चकोर भी (उन किरणों को) फन्दा ही समझ कर ठगा सा रह गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और सन्देह।

[चंचरी छंद]

रामचन्द—व्योम में मुनि देखिये अतिलाल श्रीमुख साजही।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजही।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भयी।
सूर वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हयी॥ ६६॥

शब्दार्थ—राम श्रीमुख=मुख । साजहीं=सुशोभित होते हैं । पद्मरागनि=माणिक । दिवि=आकाश । धूरि=चूर्ण । पूरित=भरी है । सूर बाजिन=सूर्य के घोड़े । खुरी=सुम । तिक्षता=तीक्ष्णता, कठोरता । हयीं=चूर्ण की हुई ।

भावार्थ—राम कहते हैं कि हे मुनि देखिए आकाश में सूर्य कैसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो समुद्र में बाडवाग्नि की ज्वालाओं का समूह विराज रहा हो । अथवा सूर्य के (रथ के) घोड़ों के अति तीक्ष्ण खुरों से चूर्ण की हुई पद्मराग मणियों की धूल से सारा आकाश भर उठा हो ।

अलंकार—सन्देह और उत्प्रेक्षा ।

[विश्वामित्र]

सोरठा—चढ्यो गगन तरु धाइ, दिनकर-बानर अरुणमुख ।
कीन्हों भुकि भहराइ, सकल तारका कुसुम बिन ॥१००॥

शब्दार्थ—भुकि=क्रुद्ध होकर । भहराइ=हिलाकर ।

भावार्थ—सरल है ।

[लक्ष्मण]

दोहा—जहीं बारुणी की करी, रचक रुचि द्विजराज ।
तहीं कियो भगवत बिन, सपति शोभा साज ॥१०१॥

शब्दार्थ—जहीं=जैसे ही । बारुणी=(१) पश्चिम दिशा, (२) शराब । द्विजराज=(१)चन्द्रमा, (२) ब्राह्मण । तहीं=त्योंही । भगवत=(१) सूर्य, (२) भगवान । साज=सामग्री ।

भावार्थ—(१)जैसे ही चन्द्रमा पश्चिम दिशा की ओर जाने की किंचित भी इच्छा करता है, वैसे ही सूर्य उसे सम्पत्ति और शोभा की सामग्री से रहित कर देता है ।

(२) ज्योंही कोई ब्राह्मण अपने हृदय में तनिक भी शराब की इच्छा करता है, त्योंही भगवान उसे सम्पत्ति और कान्ति से हीन कर देते हैं अर्थात् उसका सम्पूर्ण गौरव और मर्यादा नष्ट कर देते हैं ।

अलंकार:—श्लेष ।

[लक्ष्मण]

तोमर—चहुँभाग बाग तड़ाग, अब देखिये बड भाग ।
फल फूल सों संयुक्त, अलि यों रमैं जनुमुक्त ॥१०२॥ *

शब्दार्थ:—चहुँभाग=चारों ओर । बड़भाग भाग्यशाली (राम प्रति सम्बोधन) मुक्त=स्वच्छन्द विचरने वाले ।

भावार्थ:—हे भाग्यशाली रामचन्द्र जी ! इस जनकपुरी के चारों ओर सरोवर विद्यमान हैं जो फल और फूलों से युक्त हैं और जिनमें भ्रमर इस प्रकार विचरण करते हैं मानो स्वच्छन्द विचरण करने वाले साधु हैं ।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा ।

[रामचन्द्र]

दोहा—ति न नगरी ति न नागरी प्रतिपद हंसक हीन ।
जलज हार शोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन ॥१०३॥

शब्दार्थ.—ति=ते, वे । नगरि=नगर । नागरी=चतुर स्त्रियाँ । प्रतिपद=(१) प्रत्येक पैर, (२) कदम कदम पर । हंसक=(१) बिछुए (२) हंस+क=हंस और जल । जलज (१) मोती, (२) कमल । पयोधर=(१) कुच (२) जलाशय । पीन=(१) पुष्ट (२) बड़े बड़े ।

भावार्थ—(राम कथन) जनक के राज्य में कोई भी ऐसा नगर नहीं है जो कदम कदम पर हंस और कमलों से भरे हुए बड़े बड़े सरोवरों से हीन हो और ना ही जनक के देश में कोई भी ऐसी स्त्री है जिसका प्रत्येक पैर (सौभाग्य सूचक) बिछुओं से रहित हो और जिसके उन्नत कुचों पर मोतियों की माला न झूमती हो, अर्थात् जनक के देश की प्रत्येक नगरी प्राकृतिक शोभा के उपकरणों से पूर्ण है और वहाँ की प्रत्येक स्त्री सधवा, हृष्ट-पुष्ट और सम्पन्न है ।

अलंकार—श्लेष, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति एवं अनुप्रास ।

हु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
उ व्रत भंग भयो सु कहो अब केशव को धनु तानै ॥

क्रोध की आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम विहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने ॥१०४॥

शब्दार्थ-अवनीपति=राजा। सीग विसे=निश्चय ही। प्रन=प्रतिज्ञा। घनश्याम=(१) रामचन्द्र (२) काले मेघ। विहाने=प्रात काल। तरुपुण्य पुराने=पूर्वकालिक पुण्यरूपी वृक्ष।

भावार्थ-स्पष्ट है।

अलङ्कार-घनश्याम शब्द में परिकरांकुर और रूपक।

विश्वामित्र और जनक की भेट

दोधक-आइ गये ऋषि राजहि लीने। मुख्य सतानन्द विप्र प्रवीने।
देखि दुवौ भये पायनि लीने। आशिष शीरषवासु लै दीने ॥१०५॥

शब्दार्थ-ऋषि=याज्ञवल्क्य ऋषि। राजहि लीने=राजा जनक को साथ लेकर। प्रवीने=कुशल, निपुण। दुवो=दोनो (राजा जनक एव शतानन्द)। भये पायन=दण्डवत किया।

भावार्थ:-सरल है।

सवैया-केशव ये मिथिलाधिप हैं जग मे जिन कीरति बेलि बयी है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लयी है।
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहुं लोक में सिद्धि भयी है।
वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योग मयी है ॥१०६॥

शब्दार्थ:-केशव=रामचन्द्र जी के प्रति सम्बोधन। बई है=लगाई है। दान-कृपान-विधानन सो=दान एव युद्ध की विधि से (दान देकर एव युद्ध करके)। सिगरी=सम्पूर्ण। हाथ लई है=अपने अधिकार में करली है। अंग छ=वेद के षडाग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त ज्योतिष एव छन्द। अंग सातक=राज्य के सात अंग-राजा, मन्त्री, कोष, देश, दुर्ग सेना। अंग आठक=योग के आठ अंग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एव समाधि। भव=उत्पन्न। वेदत्रयी=ऋग, यजुर एव

अलंकारः—श्लेष।

[लक्ष्मण]

तोमर—चहुँभाग बाग तड़ाग, अब देखिये बड़ भाग।
फल फूल सों संयुक्त, अलि यों रमैं जनुमुक्त॥१०२॥ *

शब्दार्थः—चहुँभाग=चारों ओर। बड़भाग भाग्यशाली (राम प्रति-सम्बोधन) मुक्त=स्वच्छन्द विचरने वाले।

भावार्थ:—हे भाग्यशाली रामचन्द्र जी! इस जनकपुरी के चारो ओर सरोवर विद्यमान हैं जो फल और फूलो से युक्त हैं और जिनमें भ्रमर इस प्रकार विचरण करते हैं मानो स्वच्छन्द विचरण करने वाले साधु हैं।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा।

[रामचन्द्र]

दोहा—ति न नगरी ति न नागरी प्रतिपद हंसक हीन।
जलज हार शोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन॥१०३॥

शब्दार्थ—ति=ते, वे। नगरि=नगर। नागरी=चतुर स्त्रियाँ। प्रतिपद=(१) प्रत्येक पैर, (२) कदम कदम पर। हंसक=(१) बिछुए (२) हंस+क=हंस और जल। जलज (१) मोती, (२) कमल। पयो-धर=(१) कुच (२) जलाशय। पीन=(१) पुष्ट (२) बड़े बड़े।

भावार्थ—(राम कथन) जनक के राज्य में कोई भी ऐसा नगर नहीं है जो कदम कदम पर हंस और कमलों से भरे हुए बड़े बड़े सरोवरों से हीन हो और ना ही जनक के देश में कोई भी ऐसी स्त्री है जिसका प्रत्येक पैर (सौभाग्य सूचक) बिछुओं से रहित हो और जिसके उन्नत कुचो पर मोतियों की माला न झूमती हो, अर्थात् जनक. 'देश की　　प्राकृतिक शोभा के उपकरणों से　　, हृष्ट-पुष्ट और सम्पन्न है।

अलंकार

ताके भाग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम विहाने ।
जानति है जनकादिक के सब फूलि उठे तरपुण्य पुराने ॥१०४॥

शब्दार्थ–अवनीपति=राजा। सीस बिषे=निश्चय ही। प्रन=प्रतिज्ञा। घनश्याम=(१) रामचन्द्र (२) काले मेघ। विहाने=प्रात काल। तरपुण्य पुराने=पूर्वकालिक पुण्यरूपी वृक्ष।

भावार्थ–स्पष्ट है।

अलङ्कार–घनश्याम शब्द में परिकरांकुर और रूपक।

विश्वामित्र और जनक की भेट

दोधक–आइ गये ऋषि राजहिं लीने। मुख्य सतानन्द विप्र प्रवीने।
देखि दुवौ भये पायनि लीने। आशिष शीरपबासु लै दीने ॥१०५॥

शब्दार्थ–ऋषि=याज्ञवल्क्य ऋषि। राजहिं लीने=राजा जनक को साथ लेकर। प्रवीने=कुशल, निपुण। दुवौ=दोनों (राजा जनक एवं सतानन्द)। भये पायन=दण्डवत किया।

भावार्थ:–सरल है।

सवैया–केशव ये मिथिलाधिप हैं जग मे जिन कीरति बेलि बयी है।
दान-कृपान-विधानन सो सिगरी वसुधा जिन हाथ लयी है।
अंग छ सातक आठक सो भव तीनिहुँ लोक में सिद्धि भयी है।
वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योग मयी है ॥१०६॥

शब्दार्थ:–केशव=रामचन्द्र जी के प्रति सम्बोधन। बई है=लगाई है। दान-कृपान-विधानन सों=दान एवं युद्ध की विधि से (दान देकर एव युद्ध करके)। सिगरी=सम्पूर्ण। हाथ लई है=अपने अधिकार में करली है। अंग छ=वेद के षडाग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त ज्योतिष एवं छन्द। अंग सातक=राज्य के सात अंग–राजा, मन्त्री, कोष, देश, दुर्ग सेना। अंग आठक=योग के आठ अंग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि। भव=उत्पन्न। वेदत्रयी=ऋग, यजुर एव

नाम। राजगिरी=राजगी यंभन। सुमयोगमयी है — मन्द्रा योग मिना है।

भावार्थ.–शब्दार्थ की सहायता से पूर्ण स्पष्ट है।

अलंकार—रूपक

[जनक]

सोरठा–जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥ १०७॥

शब्दार्थ:–मेलि=डालकर। तपोमय=तपस्या की। वर्ण = (१) रंग (२) जाति।

भावार्थ:–(जनक कथन) जिन्होंने अपने शरीररूपी सोने को तपस्या की अग्नि में डालकर उत्तम वर्ण वाला कर लिया है अर्थात् जो तपस्या द्वारा क्षत्रिय से उत्तम वर्ण (ब्राह्मण) हो गये हैं, ये वे ही विश्वामित्र जी हैं।

अलंकार.–श्लेष से पुष्ट रूपक।

[श्रीराम]

विजय.–सब छत्रिन आदि तैं काहू छुई न छुए बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निशिवासर केशव लोकन को तम तेज भगै॥
भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै ॥१०८॥

शब्दार्थ–आदि दै = इत्यादि। बिजनादिक = पंखे इत्यादि की। बात = वायु, हवा। डगै = हिलती हैं। भवभूषण = (१) राख (धुल) (२) सांसारिक आभूषणादि। भूषित = ढकना, आच्छादित होना। मसी = कालिख, श्री=शोभा।

भावार्थ:–(राम कथन लक्ष्मण प्रति) हे लक्ष्मण! निमिवंश में अद्भुत ज्योति जागृत रहती है जिसकी शोभा जल और स्थल में सर्वत्र परिव्याप्त है। वह ज्योति ऐसी है कि जिसे समस्त क्षत्रियों में से कोई भी स्पर्श

नहीं कर सकता तथा जो पर्व इत्यादि की हवा से भी विचलित नहीं होती। जो न कभी घटती है और न बढ़ती है, रात-दिन एक रूप रहती है और जिसके प्रकाश से लोकों का घना अन्धकार भाग जाता है। उस ज्योति में राग (धूल) भी नहीं लगती–(श्लेष अलङ्कार द्वारा) निश्चित ही वह ज्ञान ज्योति सांसारिक आभूषणों (वैभव) से मन्द नहीं होती। मस्त हाथियों की कजरी भी उस ज्योति में लगने नहीं पाती अर्थात् हाथी घोड़े आदि रखने के अहङ्कार का कालिख भी उसे कलंकित नहीं कर सकता।

अलंकार:—व्यतिरेक।

[विश्वामित्र]

विजय—आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुवपालै सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत है भुवपालि न जाई।
भूपति की तुमही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूषन को भवि भूषण भूतन ते तनया उपजाई ॥१०६॥

शब्दार्थ:–भुव = पृथ्वी। विदेहन = जीवन मुक्त पुरुषों में। कल = सुन्दर। भूषण को भवि भूषण = आभूषणों का भी भव्य भूषण अर्थात् आभूषणों को भी अपने सौंदर्य से आभूषित करने वाली। भूतन तें = पृथ्वी के शरीर से। तनया = पुत्री।

भावार्थ –(विश्वामित्र कथन जनक प्रति) हे जनक! अपने अपने स्थान पर तो सभी राजा भूमि का पालन करते हैं, किन्तु वे केवल नाम के ही भूमि-पालक कहलाते हैं। वास्तव में उनसे पृथ्वी का पालन होता नहीं। केवल तुम्ही एक ऐसे व्यक्ति हो जिन्होंने शरीर तो राजाओं का धारण किया है किन्तु जिनकी सुन्दर कीर्ति का बखान जीवन मुक्त पुरुषों ने भी किया है। ऐसे विदेह होकर भी आप सच्चे अर्थों में भूपति हैं क्योंकि आपने पृथ्वी के अङ्ग से एक अत्यन्त सुन्दर कन्या को उत्पन्न किया है।

अलंकार:—विरोधाभास

[जनक]

दोधक—ये गुन कौन के सोर्भाहि साजे ?
सुन्दर स्यामल गौर विराजे ।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ ।
कै कमला विमला पति कोऊ ॥११०॥

शब्दार्थ:—सोर्भाहि साजे = शोभा से सुसज्जित होने वाले। जानत हौं जिय = मुझे ऐसा लगता है। सोदर = सहोदर, सगे भाई। कमलापति = विष्णु। विमलापति = ब्रह्मा।

भावार्थ:—सरल है।

अलंकार:—सन्देह।

[विश्वामित्र]

चौपाई—सुन्दर स्यामल राम सु जानो, गौर सुलक्ष्मण नाम बखानो।
आशिष देहु इन्हैं सब कोऊ, सूरज के कुल मंडन दोऊ ॥१११॥

शब्दार्थ:—सूरज के कुलमंडन = सूर्यवंश की शोभा बढ़ाने वाले।

भावार्थ:—सरल है।

दोहा—नृपमणि दशरथ नृपति के, प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥११२॥

भावार्थ:—सरल है।

[विश्वामित्र]

घनाक्षरी—दानिन के शील परदान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।
दीप दीपहू के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के।
आनन्द के कन्द सुर पालक से बालक ये,
परदार प्रिय साधु मन वच काय के।

देह धर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजन कुमार ऐसे दसरथ राय के ॥११३॥ ०

शब्दार्थ :–शील = स्वभाव । परदान के ग्रहाणैदिन = प्रतिदिन परायों से (शत्रुओं से) दण्डरूप में दान लेने वाले । दानवारि = विष्णु । निदान = मन्तत । वन्द = बादल । सुरपालक = इन्द्र । पद्मदार = लक्ष्मी, पृथ्वी ।

भावार्थ :–बड़े बड़े दानियों के से स्वभाव वाले, और प्रतिदिन अपने शत्रुओं से दण्ड स्वरूप धन (दान) लेने वाले हैं । स्वभाव की दृष्टि से अन्त में विष्णु के समान हैं । समस्त द्वीपों को अपनी कीर्ति से दीपक की भाँति आलोकित करने वाले और बड़े बड़े राजाओं के भी राजा हैं । (किन्तु इतना होने पर भी) केशवदास कहते हैं कि (अपने पूर्व पुरुष) राजा पृथु के समान ब्राह्मण एवं गाय के सेवक हैं । ये बालक आनन्द की वृष्टि करने वाले मेघ हैं तथा देवताओं के पालन करने वाले इन्द्र के समान हैं । ये लक्ष्मी के प्रिय हैं किन्तु मन, और शरीर से साधु हैं । ये देह धारण किये हुए भी विदेह के से समान हैं । हे राजन ! इन गुणों से सुशोभित होने वाले ये राजा दशरथ के राजकुमार हैं ।

अलंकार–विरोधाभास ।

सोरठा—जब तें बैठे राज, राजा दसरथ भूमि में ।
सुख सोयो सुरराज, ताहिन ते सुरलोक में ॥११४॥

भावार्थ–स्पष्ट है ।

अलंकार–असंगति ।

स्वागत—राज राज दसरत्थ तनै जू । रामचन्द्र भुवचन्द्र बनै जू ॥
त्यो विदेह तुमहू घर सीता । ज्यों चकोर तनया शुभगीता ॥११५॥

शब्दार्थ :–राजराज–राजराजेश्वर (चक्रवर्ती सम्राट) । तनै–पुत्र । भुव-चन्द्र = पृथ्वी के चन्द्रमा । चकोर तनया = चकोर की पुत्री के समान । शुभ-गीता = सर्व प्रशंसित ।

भावार्थ:—जिस प्रकार राजा दशरथ राजराजेश्वर हैं उसी प्रकार उनके पुत्र रामचन्द्र पृथ्वी के चन्द्रमा हैं। आप भी जिस प्रकार (सर्व प्रशसित) विदेह राज हैं, उसी प्रकार आपकी पुत्री सीता भी चकोर पुत्री की भाँति (सुन्दर और प्रेममयी) सर्व प्रशसित है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आप तथा राजा दशरथ समान रूप से गौरवशाली हैं, उसी प्रकार रामचन्द्र और सीता भी समान रूप से सर्वप्रशसित होने के कारण एक दूसरे के उपयुक्त हैं।

अलंकार—सम।

विश्वामित्र—रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राज समाजनि लेख्यो ॥११६॥

जनक—ऋषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊँ।
गहि ल्यावहिं हौ जनयूथ बुलाऊँ ॥११७॥

भावार्थ:—स्पष्ट और सरल है।

जनक—वज्र तें कठोर है, कैलाश ते विशाल, काल–
दंड तें कराल, सब काल काल गावई।
केशव त्रिलोक के त्रिलोक हारे देव सब,
छोड़ चंद्रचूड एक और को चढावई?
पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि-पर्वत-प्रभा न मान पावई।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक, ताहि,
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ॥११८॥

शब्दार्थ:—काल काल=काल का भी काल। चन्द्रचूड=महादेव। पन्नगपति=सर्पराज वासुकी। पनच=प्रत्यंचा। पीन=पुष्ट। पर्वतारि=पर्वतों के शत्रु अर्थात् इन्द्र। पर्वत प्रभा=दैत्य। मान=भारीपन का अनुमान। विनायक=गणेश।

भावार्थ:–जो धनुष वज्र से भी कठोर, कैलाश पर्वत से भी बड़ा और काल के दण्ड से निष्ठुर है और जिसे सब काल का भी काल कहते हैं, तीनों लोकों के सारे देवता जिसे देखकर परास्त हो गए हैं और जिस धनुष को केवल महादेव जी को छोड़कर दूसरा कोई नहीं चढ़ा सकता, जिसमें सर्पराज वासुकी की बुद्धि अन्यथा लगती है, इन्द्र तथा दैत्यादि भी जिसके भारीपन का अनुमान नहीं लगा सकते और जिस धनुष को अकेले गणेश जी भी उठाकर नहीं ला सकते, भला उस धनुष को कमल के समान कोमल हाथों वाले राम कैसे उठा सकेंगे ।

विश्वामित्र–सुनि रामचन्द्र कुमार, धनु आनिए यहि बार ॥
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव, यश लोक लोक बढ़ाव ॥११९॥

शब्दार्थ:–आनिए=लेकर आओ । यही बार=इसी समय ।
भावार्थ:–स्पष्ट ही है ।

धनुष-भङ्ग

दोहा–ऋषिहि देखि हरप्यो हियो, राम देखि कुम्हलाइ ।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाइ ॥१२०॥

भावार्थ–राजा जनक का हृदय ऋषि विश्वामित्र को देखकर (उनकी तपस्या की शक्ति के कारण) प्रसन्न हो रहा है, किन्तु रामको देखकर कुम्हला रहा है (उनकी सुकुमारता देखकर), और (शिव के) धनुष को देखकर (उसकी विशालता के कारण) अत्यन्त भयभीत हो रहा है । इस प्रकार उनका चित चिन्ता से विचलित है ।

स्वागता–रामचन्द्र कटि सों पटु बाँध्यो, लीलयेव हरको धनु साँध्यो ।
नेकु ताहि कर पल्लव सो छ्वै, फूलमूल जिमि टूक कर्यो द्वै ॥१२१॥

शब्दार्थ –कटिसों=कमर में । पटु=कमरबन्दा । लीलयेव=खेल ही खेल में । साँध्यो=सधान किया, चढ़ाया । फूलमूल=फूल की डण्डी के समान ।

भावार्थ:—सरल है।

अलंकार:-विभावना से पुष्ट पूर्णोपमा।

सवैया—उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण तें गुणवंत कियो सुख केशव संत अनन्तन दीनो।
ऐंचो जहीं तबहीं कियो संयुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभु को सांचो शरासन कीनो।।१२२।।

शब्दार्थ-उत्तमगाथ=प्रशंसित। निर्गुण=जिसकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ाई गई थी। गुणवन्त कियो=प्रत्यंचा चढ़ा दी। नराचनवीनो=नूतन (अपूर्व) बाण। शरासन=बाण का आसन।

भावार्थ-जब रामचन्द्र जी ने उस सर्व प्रशंसित धनुष को अपने हाथ में लिया तो वह सनाथ (स्वामी युक्त) हो गया। उस प्रत्यंचा रहित धनुष पर जब राम ने प्रत्यंचा चढ़ाई तो अगरुय सन्तों को सुख प्राप्त हुआ। जब उसे ताना तो उस पर अपने तीक्ष्ण कटाक्षरूपी अपूर्व बाण को रख दिया और इस प्रकार राजकुमार रामचंद्र ने शङ्कर के उस धनुष को स्नेहपूर्वक देखकर सच्चे अर्थों में शरासन (शरका आसन) बना दिया अर्थात् उसका 'शरासन' नाम सार्थक कर दिया।

विजया-प्रथम टकोर झुकि झारि संसार मद
चंड कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल
पालि ऋषिराज के वचन परचंड को।
सोधु दै ईश को, बोधु जगदीश को,
क्रोध उपजाइ भृगुनन्द बरिबंड को-
बाधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग धनु।
भग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मांड को।।१२३।।

शब्दार्थ-झुकि=क्रुद्ध होकर। झारि=हटा दिया। चण्डकोदंड=प्रचंड धनुष। रह्योमंडि=भरगई (टकोर)। चालि=काँप गई। अचला=

पृथ्वी। घालि=नष्ट करके। सोधु=सूचना। ईश=महादेव। जगदीश=विष्णु। भृगुनन्द=परशुराम। बरिवण्ड=बलशाली। बाधिवर स्वर्ग को – स्वर्ग के कार्यों में पूर्ण रूप से बाधा डालकर। साधि अपवर्ग को=मुक्ति की साधना करके (दधीचि की हड्डियों की जिनसे यह धनुष बना था)।

भावार्थ–उस प्रचंड धनुष की प्रथम टंकोर ने ही क्रुद्ध होकर समाज के अहङ्कार को भग कर दिया और वह पृथ्वी के नवों खण्डों में परिव्याप्त हो उठी। अचल पृथ्वी को कँपाकर, दिग्पालों (इन्द्र, वरुण, कुबेरादि) के बल को नष्ट करके, ऋषिराज विश्वामित्र के प्रचंड आदेश का पालन करके, महादेव को सूचना देकर (धनुष टूटने की), विष्णु को समझा कर (कि समाज का सारा कार्य यथावत् भली प्रकार चल रहा है), बलशाली परशुराम जी के हृदय में क्रोध उत्पन्न करके, स्वर्ग के कार्यों में पूर्ण रूपेण बाधा डालकर (आश्चर्य के कारण) और राजा दधीचि की हड्डियों को मुक्ति दिलाकर धनुष के टूटने का वह प्रचंड शब्द समस्त ब्रह्माण्ड को भेदन करता हुआ पार निकल गया।

अलंकार:–सहोक्ति।

जनक.—सतानन्द आनंद मान तुम जो हुते उन साथ।
बरण्यो काहे न धनुष जब, तोर्‌यो श्रीरघुनाथ ॥१२४॥

भावार्थ—स्पष्ट है।

सतानंद—सुनु राजराज विदेह जब ही धनो करि देह।
बुद्धि में न आनी बात बर तोरियो धनु तात ॥ १२५ ॥

भावार्थ—सरल है।

दोहा—सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन को, हृदयावलि भूपाल ॥ १२६ ॥

भावार्थ–(धनुष टूटने के बाद) सीताजी ने रामचन्द्रजी को उज्ज्वल कमलों की माला पहिराई। वह माला ऐसी प्रतीत होती थी मानो सब राजाओं की हृदयावली ही हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

चित्रपदा:—सीय जहाँ पहिराई, रामहि माल सुहाई ।
दुंदुभि देव बजाये, फूल तहीं बरसाये ॥ १२७ ॥

भावार्थ—स्पष्ट और सरल है ।

बरात-आगमन

दोहा—पठई तबहीं लगन लिखि, अवधपुरी सब बात ।
राजा दशरथ सुनतहीं, चाल्यो चली बरात ॥ १२८ ॥

भावार्थ—स्पष्ट है ।

मोटनक—आये दशरथ बरात सजे, दिगपाल गयंदनि देखि लजे ।
चाल्यो दल दूलह चारु बने, मोहे सुर औरनि कौन गने ॥१२९॥

भावार्थ—सरल है ।

तारक—मिलि चारि बरात चहूँ दिसि आयी ।
नृप चारि चमू अगवान पठायी ॥
जनु सागर को सरिता पगु धारी ।
तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी ॥ १३० ॥

शब्दार्थ—चमू=टुकड़ी । अगवान=स्वागत के लिए । पगुधारे=आई हैं । कहँ=के लिए ।

भावार्थ—स्पष्ट है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

त्रिभंगी—दशरथ सँघाती सकल बराती बनि बनि मंडप माँह गये ।
आकाश विलासी प्रभा प्रकासी जलज गुच्छ जनु नखत नये ॥
अति सुन्दर नारी सब सुखकारी, मंगल गारी देन लगीं ।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहाँ तहाँ शुभ शोभ जगी ॥१३१॥

शब्दार्थ—सँघाती=साथी, साथ आए हुए । आकाश विलासी=बहुत ऊँचा और विस्तृत । प्रभा प्रकासी=आलोक विमंडित, प्रकाश से जगमग

लटका हुआ । कलश पुञ्ज = मणियों के गुच्छे । शुभ = सुन्दर । जगी प्रकट हुई ।

भावार्थ—राजा दशरथ के साथ आए हुए सारे बराती सुसज्जित होकर विवाह मंडप में गए । वह विवाह मडप आकाश के सदृश बहुत ऊँचा और विस्तृत है । प्रकाश से जगमगा रहा है तथा उसकी झालरों में जो मोतियों के गुच्छे लगे हुए हैं वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नूतन नक्षत्र हों । (अपने सौन्दर्य से) सबों का सुख देने वाली सुन्दर नारियाँ मगल गीत गाने लगी हैं, मानो मेघ गर्जना कर रहे हों । इस प्रकार सारे मंडप में निस्सीम शोभा प्रकट हो रही है ।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा ।

दोहा—रामचन्द्र सीता सहित, शोभित हैं तेहि ठौर ।
सुवरणमय मणिमय खचित, शुभ सुन्दर सिर मौर ॥ १३२ ॥

शब्दार्थ.—तेहि ठौर = उस स्थान पर (विवाह मडप में) । सुवरणमय = सोने का । मणिमय खचित = जिसमें मणियाँ जड़ी हुई हैं । मौर = विवाह का मुकुट ।

भावार्थ:—स्पष्ट है ।

विवाह

षट्पद—बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण ।
केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभ निवारण ।
भारद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि ।
विश्वामित्र पवित्र चित्र मति वामदेव पुनि ।
सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठ मति तहँ वशिष्ठ पूजन कलश ।
शुभ शतानन्द मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस ॥ १३३ ॥

शब्दार्थ:—मागध = बिरदावली गाने वाले । सूत = स्तुति करने वाले । विद्याधर = विद्वान् । चारण = वंशावली बखान करने वाले । सिद्ध = सिद्धि प्राप्त लोग । अशुभ निवारण = अनिष्ट को दूर करने वाले । चित्र-मति =

विचित्र बुद्धि वाले। प्रतिष्ठित=पूज्य । निष्ठमति=उत्तम बुद्धि वाले। शाखोच्चार=वंशावली एवं गोत्रादि का परिचय।

भावार्थः—स्पष्ट एवं सरल है।

मनुकूल—पावक पूज्यो समिध सुधारी।
आहुति दीनी सब सुखकारी।
दै तब कन्या बहु धन दीन्हो।
भाँवरि पारि जगत यश लीन्हों ॥ १३४ ॥

शब्दार्थः—पावक=अग्नि । समिध=हवन की लकड़ी । भाँवरिपारि=अग्नि की परिक्रमा कराके ।

भावार्थः—सरल है।

स्वागता.—राजपुत्रकनि सों छवि छाये, राजराज सब डेरहि आये।
हीर चीर गज बाजि लुटाये, सुन्दरीन बहु मंगल गाये ॥ १३५ ॥

शब्दार्थः—राजपुत्रिकनि सों=राजकुमारियों के साथ । राजराज सब=राजाओं सहित राजा दशरथ । डेरहि=ठहरने के स्थान पर, जनवासे में। हीर=हीरे। चीर=वस्त्र।

भावार्थः—सरल है।

दोहाः—पूजि राजऋषि ब्रह्मऋषि, दुंदुभि दीन्हि बजाइ।
जनक-कनक-मन्दिर गये, गुरु समेत सुख पाइ ॥ १३६ ॥

शब्दार्थ—राजऋषि=राजा दशरथ एवं अन्य राजा लोग। ब्रह्मऋषि=वशिष्ठ, जाबालि एवं वामदेव आदि। दीह दुंदुभी=बड़े बड़े नक्कारे। कनक मन्दिर=स्वर्ण के महल में। गुरु=सतानन्द ।

भावार्थ—स्पष्ट है।

राम का शिखनख

दोहा—गंगाजल की पाग सिर, सोहत श्री रघुनाथ।
शिव सिर गंगाजल किधौं, चन्द्र चन्द्रिका साथ ॥ १३७ ॥

शब्दार्थ—गंगाजल=एक प्रकार का चमकदार श्वेत रेशमी कपड़ा।

भावार्थ—श्री रघुनाथजी के सिरपर यह गंगाजल नामक कपड़े की पगड़ी सुशोभित हो रही है, अथवा शिवजी के सिर पर सचमुच गंगाजल ही है जो चन्द्रमा की किरणों से युक्त है।

अलंकार—सन्देह।

तोमर—कछु भृकुटि कुटिल सुवेश, अति अमल सुमिल सुदेश।
विधि लिख्यो सोधि सुतन्त्र, जनु जया-जय के मन्त्र॥ १३८॥

शब्दार्थ—सुवेश=सुन्दर। सुमिल=चिकनी। सुदेश=उचित और समान लम्बाई चौड़ाई की। सुतन्त्र=स्वच्छन्दता पूर्वक। जयाजय के मन्त्र—दूसरों को जीतने और स्वयं अजित रहने के मन्त्र।

भावार्थ—राम की भृकुटियाँ किंचित टेढ़ी, सुन्दर, उज्ज्वल, चिकनी और उचित तथा समान लम्बाई-चौड़ाई की हैं। वे ऐसी मालुम पड़ती हैं मानो ब्रह्मा ने स्वच्छन्दता पूर्वक संशोधित करके अपने हाथ से दूसरों को जीतने और स्वयं अजित रहने के मन्त्र लिख दिए हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दोहा—यदपि भृकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्ध गति होति॥ १३९॥

भावार्थ—यद्यपि रघुनाथजी की भृकुटि की छबि देखने में टेढ़ी है, तो भी उसे देखने पर सुर, असुर एवं नरों को शुद्ध गति (मुक्ति) प्राप्त होती है।

अलंकार—विरोधाभास।

दोहा—श्रवण मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र।
शशि समीप सोहत मनो, श्रवण मकर नक्षत्र॥ १४०॥

शब्दार्थ—श्रवण—कानों में। सुखमा=शोभा। श्रवण=नक्षत्र। मकर=मकर नाम की राशि।

भावार्थ—राम के कानों में मकर की आकृति वाले कुण्डल झूल रहे हैं और मुख की (सारी) शोभा भी वहीं एकत्रित हो रही है। छवि ऐसी मालूम होती है मानो मकर राशि के अन्तर्गत साक्षात् चन्द्रमा शोभा दे रहा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

पद्धटिका—अति वदन शोभ सरसी सुरंग।
तहँ कमल नयन नासा तरंग।
जनु युवति चित्त विभ्रम विलास।
तेइ भ्रमर भँवत रस रूप पास॥ १४१॥

शब्दार्थ—वदन=मुख। शोभ=शोभा। सरसी=पुष्करिणी। सुरंग=निर्मल। चित्त विभ्रम विलास=चित्तों में भ्रमित होते कौतुक। भँवत=भ्रमण करते हैं।

भावार्थ—श्री राम के मुख की शोभा एक अत्यन्त निर्मल पुष्करिणी है जिसमें नेत्र ही कमल हैं और (उभरी हुई) नासिका ही तरंगें हैं और उस सौन्दर्य की पुष्करिणी पर युवतियों के जो चित्त कौतुक में भ्रमण करते हैं वे ही रूप रूपी मकरंद की आशा से मँडराते हुए भ्रमर हैं।

शब्दार्थ—सांग रूपक।

दोहा—ग्रीवा श्री रघुनाथ की, लसति कंबुवर वेस।
साधु मनो वच काय की, मानो लिखी त्रिरेख॥ १४२॥

शब्दार्थ—ग्रीवा=गरदन। लसति=सुशोभित होती है। कंबुवरवेष=सुन्दर शंख के समान। मनो=मन। वच=वचन। काय=शरीर (कर्म)।

भावार्थ—श्री राम की गरदन सुन्दर शंख के रूप में सुशोभित होती है मन, वचन और कर्म से वह ग्रीवा साधु है और मानो इसी बात के प्रमाण रूप में ब्रह्मा ने तीन रेखाएँ डालदी हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सुन्दरी—सोभन दीरघ बाहु बिराजत।
देव सिहात, अदेव दे लाजत।
बैरिन को अहिराज बखानहु।
है हितकारिन को ध्वज मानहु ॥ १४३ ॥

शब्दार्थ—सोभन = सुन्दर। सिहात = स्पर्द्धा करते हैं। अदेव = असुर। लाजत = लज्जित होते हैं (पराजित होने के कारण)। अहिराज = विशाल सर्प। हितकारिन = मित्रगण। ध्वज = ध्वजा।

भावार्थ—राम की लम्बी २ भुजाएँ सुशोभित हो रही हैं जिन्हें देख-कर देवता स्पर्द्धा करते हैं तथा असुर लज्जित होते हैं। शत्रुओं के लिए उन्हें विशाल सर्प ही कहना चाहिए और मित्रों के लिए ध्वजा ही मानना चाहिए।

सुंदरी—राजो उर पै भृगुलात बखानहु।
श्रीकर को सरसीरुह मानहु।
सोहति है उर में मणि यों जनु।
जानकि को अनुराग रह्यो मनु ॥ १४४ ॥

शब्दार्थ—भृगु-लात = भृगुजी के चरण का चिन्ह। श्रीकर = लक्ष्मी के हाथ का। सरसीरुह = कमल। मणि = वक्षस्थल पर पहनने का आभूषण विशेष।

भावार्थ—राम के वक्षस्थल पर भृगुजी की लात का चिन्ह ऐसा है मानो श्री लक्ष्मीजी के हाथ का कमल हो। हृदय पर मणि (आभूषण विशेष) ऐसा प्रतीत होता है मानो जानकी जी का मन अनुराग युक्त होकर वहाँ पर टिका हो।

अलंकार—उल्लेख।

दोहा—को बरनै रघुनाथ-छबि, केशव बुद्धि उदार।
जाकी किरपा शोभिजति, शोभा सब संसार ॥१४५॥

सामने कुरूप देव नारियाँ क्या हैं? हो क्या? उनका रूप तो ऐसा है कि जिस पर रूप की सारी उपमाएँ भी न्यौछावर कर देनी चाहिए।

अलंकार—आकृति से पुष्ट प्रतीप।

दहेज—वर्णन

चामर—मत्त दन्तिराज राजि बाजिराज राजि कै।
हेम हीर मुक्त चीर चारु साजि साजि कै।
वेष वेष वाहिनी अशेष वस्तु सोधि कै।
दाइजो विदेह राज भाँति भाँति को दियो॥ १४३॥

शब्दार्थ—दन्तिराज राजि = बड़े बड़े हाथियों का समूह। बाजिराज राजि = बड़े बड़े घोड़ों का समूह। कै = कर। हेम = स्वर्ण। हीर = हीरे जवाहरात। मुक्त = मोती। चीर चारु = सुन्दर वस्त्र। वेष वेष = तरह तरह के। वाहिनी = सेना का समूह। अशेष = सम्पूर्ण। सोधियो = खोज खोज कर। दाइजो = दहेज।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

चामर—वस्त्र भौन स्यों वितान आसने बिछावने।
अस्त्र शस्त्र अंगत्राण भाजनादि को गने।
दासि दास बासि बास रोमपाट के किये।
दाइजो विदेह राज भाँति भाँति को दिये॥ १४४॥

शब्दार्थ—वस्त्रभौन = तम्बू। स्यों = सहित। वितान = मण्डप। अंगत्राण = कवच। भाजनादि = बरतन आदि। गने = गिने। बासि बास = सुगन्धित वस्त्र। रोम के = ऊन के। पाट के = रेशम के।

भावार्थ—सरल है।

परशुराम—सम्वाद

दोहा—विश्वामित्र बिदा भये, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज को परशुराम अकुलाइ॥ १४५॥

भावार्थ:—सरल है।

चंचरी—मत्त दंति अमत्त हो गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेस केसव दुंदुभि नहीं बज्जहीं।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकहि नारि भेषन सज्जहीं॥ १५०॥

शब्दार्थ.—मत्त मस्त। दंति हाथी। अमत्त=मस्ती रहि[illegible] सुदेस=सुन्दर (गम्भीर ध्वनि से) दुंदुभि नक्कारे। सूरज- शूरों के पु[illegible] तनत्रान - कवच। एकहि =कोई कोई।

भावार्थ:—(परशुराम जी के आते ही मिथिल सेना के) मस्[illegible] हाथियों का मद उतर गया और अब वे एक दूसरे को देख देखकर नह[illegible] गरजते हैं। ठौर ठौर पर सुन्दर (गम्भीर) ध्वनि में नक्कारे नहीं बजते। शूरों के पुत्र अर्थात् वंश परम्परा से जो शूरवीर थे वे अपने २ हथियारों को फेंक फेंक कर अपने २ प्राणों को लेकर भागने लगे और कोई कोई अपने कवचों को काट काटकर (उतार कर) स्त्री वेष में सुसज्जित होने लगे।

अलंकार:—अत्युक्ति।

दोहा:—वामदेव ऋषि सों कह्यो, परशुराम रणधीर।
महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलबीर॥ १५१॥

भावार्थ:—सरल है।

वामदेव:—महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज?
तोरेउ 'रा' यह कहतही, समुझ्यो रावन राज॥ १५२॥

भावार्थ:—स्पष्ट है।

परशुराम—अति कोमल नृप सुतन की ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दशकंठ के, काटहु कंठ कुठार॥ १५३॥

भावार्थ.—सरल है।

जद्यपि है अति दीन, याहि तऊ खल मारने।
गुरु अपराधहि लीन, केशव क्यों कर छोड़िये ॥ १५४ ॥

शब्दार्थ —दीन = तुच्छ। खल = दुष्ट।

भावार्थ —रावण यद्यपि मेरे इस कुठार के निकट अत्यन्त तुच्छ है तथापि उस दुष्ट रावण को मुझे मारना ही है। मेरे गुरु के अपराध में लीन उसको किस प्रकार छोड़ा जा सकता।

[संयुक्ता-छंद]

परशुराम—यह कौन को दल देखिए ?
वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिए ॥
परशुराम—कहि कौन राम न जानियो।
वामदेव—सर ताड़का जिन मारियो ॥ १५५ ॥

भावार्थः—सरल है।

[त्रिभंगी छंद]

परशुराम—ताड़का मारी तिय न विचारी।
कौन बड़ाई ताहि हने ?
वामदेव—मारीच हुते सँग प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहू न गने।
करि क्रतु रखवारी गुरु सुखकारी
गौतम की तिय शुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंड्यो हरधनु खंड्यो
सीय स्वयंवर माँझ बरी ॥ १५६ ॥

शब्दार्थ—तिय = स्त्री। हने = मारने में। हुतो = था। क्रतु = यज्ञ। गौतम की तिय = अहल्या। खंड्यो = तोड़ा। जस दस मंड्यो = वंश को अपने यश से सुशोभित किया।

भावार्थ —स्पष्ट एवं सरल है।

शब्दार्थ —कुश मुद्रिका=संध्या के समय अंगूठे में पहिनने का कुश का छल्ला, पैंती। समिधें=हवन की लकड़ी। स्रुवा=चम्मच के आकार का होम में घृत डालने का पात्र। वल्कल=कथा। तरकसी=तूणीर। निषंग=तीक्ष्ण। मेखला=करधनी। म्यो=सहित।

भावार्थ –(परशुराम को देखकर भरत का राम से प्रश्न) जो पवित्र काष्ठ, स्रुवा, कुश और कमण्डल को लिए हुए हैं, और जिनके कन्धे पर बाण, धनुष और तूणीर विद्यमान हैं, जिनके वक्षस्थल पर भृगु के चरण का चिन्ह सा दिखाई दे रहा है जो धनुष, बाण, तीक्ष्ण कुठार और मृगछाला से युक्त हैं, हे रघुवीर! सात्विक धर्म के सहित वीर रस के समान दिखाई देने वाले यह कौन हैं?

अलंकार—भ्रम एवं अनुमान का संकर।

राम —प्रचण्ड हैहयाधिराज दण्डमान जानिए।
अखंड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिए॥
अदेव देव जेय भीत रक्षमान लेखिए।
अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेश देखिए॥ १६१॥

शब्दार्थ:—हैहयाधिराज=सहस्रार्जुन। दण्डमान=दण्ड देने वाले। रक्षमान=रक्षा करने वाले। लेखिए=समझिए। अमेय=अमित निस्सीम। भर्ग=शंकर।

भावार्थ—(राम का भरत को उत्तर) हे भरत! इन्हें तुम पराक्रमी सहस्रार्जुन को दण्ड देने वाला जानो और अखण्ड कीर्ति का लेने वाला तथा भूमि को दान में देने वाला मानो। असुर और देवताओं को जीतने वाला और भीत जनों की रक्षा करने वाला समझो। (इस प्रकार) अपरिमित तेज से युक्त शंकर के भक्त भृगुवंशियों में श्रेष्ठ परशुरामजी को देख रहे हो।

अलंकार—उल्लेख।

परशुराम:—तोरि सरासन शंकरको, सुभ सीय स्वयंवर माँझ वरी।
ताते बढ्यो अभिमान महा मन भेदियो नेक न संक करी॥

राम:—सो अपराध परो हम सो अब क्यो सुधरे तुमही तो कहौ।
परशुराम:—बाहु दै दोउ कुठारहि केशव आपने धाँम को पथ गहौ॥१६२॥

शब्दार्थ:—सरासन=धनुष। माँझ=मध्य में। वरी=वरण किया है। भेदियो=भेदियो के स्थान पर 'भेरियो' करिए जिसका अर्थ है-मेरी भी। संक=भय। परो=होगया है।

भावार्थ—स्पष्ट है।

राम:—टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोस।
त्यो अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोस।
हम पर कीजत रोस काल गति जानि न जायी।
होनहार ह्वै रहे मिटै मेटी न मिटायी।
होनहार ह्वै रहे मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका वज्र, वज्र तिनुका ह्वै टूटै॥ १६३॥

शब्दार्थ—टूटनहार=टूटने वाला। कालगति=समय की महिमा।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार:—लोकोक्ति से पुष्ट गूढ़ोत्तर।

परशुराम:—केसव हैहयराज को मांस,
हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
तालगि मेद महीपन को,
घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे।
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार,
जो चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लहि तू
रघुबीर को ओन-सुधा न पियो रे॥ १६४॥

शब्दार्थ:-हलाहल=विष। कौरन=ग्रास। तालगि=उसके लिए (शान्ति के लिए)। मेद=चर्बी। सिरानो=शीतल हुआ। श्रोण=रक्त। सुधा=चूने का पानी।

भावार्थ:-(परशुराम अपने परशु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं) हे कुठार! तूने सहस्रार्जुन के माँस को काटने के रूप में मानो हलाहल विष के कौर को खा लिया था। तेरे उस विष की शान्ति के निमित्त मैंने तुझको अनेक राजाओं की चर्बी को घृत के रूप में घोलकर पिलाया, किन्तु फिर भी तेरा हृदय शीतल नहीं हुआ। हे मित्र कुठार! यदि तू दीर्घ काल तक जीवित रहना चाहता है तो मेरा कहना मान। तुझे तब तक सुख नहीं मिल सकता जब तक कि तू राम के रक्त रूपी सुधा (चूने के पानी) का पान नहीं करेगा।

अलंकार—रूपक।

सोरठा:-लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोस करि।
बरज्यो श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा?॥१६५॥

भावार्थ—सुगम है।

दोहा—भगवतन सो जीतिए, कबहुँ न कीने शक्ति।
जीतिय एकै बात तें, केवल कीने भक्ति॥१६६॥

भावार्थ—(राम भ्राताओं प्रति) भगवानों को शक्ति प्रयोग द्वारा कभी नहीं जीता जा सकता। उन्हें तो केवल उनकी भक्ति द्वारा ही जीता जा सकता है।

हरिगीत—जब हयो हैहैराराज इन बिन छत्र छिति मंडल कर्‌यो।
गिरि बेधि, खटमुख जीति, तारक-नंद को जब ज्यों हर्‌यो॥
सुन मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वत नंदिनी।
'वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भयी जगवंदनी'॥१६७॥

शब्दार्थ:—हयो=मारा। बिन छत्र=बिना राजा के। छिति मण्डल=पृथ्वी मण्डल। गिरिबेध खटमुख=क्रौंच नाम के पर्वत को विद्ध करने वाले

तारिक। तारकनन्द=तारकासुर का पुत्र। और और, प्रान। गन मो=परशुराम के समान। पार्वती=पार्वती। रेणुका—परशुराम की माता।

भावार्थ—(राम कहते हैं कि जब इन्होंने (परशुराम ने) सहस्रार्जुन को मारा था तब समस्त पृथ्वीमण्डल को राजाओं से विना कर दिया था, और जब क्रौंच नामक पर्वत को छिद्र युक्त करके कार्तिकेय ने जीत कर तारक नामक असुर के पुत्र के प्राणों को हरा था, तब पार्वती ने कहा था कि मैंने परशुराम जैसे पुत्र को जन्म न दिया। यह रेणुका नाम की स्त्री धन्य है जो ऐसे वीर को जन्म देकर जगत द्वारा वन्दनीय बन गई।

परशुरामः—सुनि राम शील समुद्र। तव बंधु हैं अति क्षुद्र॥
मम बाडवानल कोप। अब कियो चाहत लोप॥१६८॥

भावार्थ:—हे शील के समुद्र राम! सुनो तुम्हारे ये भाई अत्यन्त क्षुद्र हैं। अतः अब मेरी क्रोध की बाड़वाग्नि इनको नष्ट करना चाहती है।

परशुरामः—हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हो।
मारन हारहि देखि कहा मन छोभत हो॥
छत्रिय के कुल ह्वै किमि बैनन दीन रचौ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीचु बचौ॥ १६६॥

शब्दार्थ:—छोभत हो=डरते हो। किमि=क्यों। बैनन दीन रचौ=दीन वचन बोलते हो। उपचार=यत्न। मीचु=मृत्यु।

भावार्थ:—तुम सब लोग अपने हाथो मे हथियार लिए हुए हो, फिर मारने वाले को देखकर मन में क्यो डरते हो। क्षत्रिय वंश मे उत्पन्न होकर भी क्यों दीन वचन बोल रहे हो, किन्तु तुम चाहे इस प्रकार के करोडो यत्न ही क्यो न करो, हमारे हाथो मरने से कैसे भी नहीं बच सकोगे।

लक्ष्मण—छत्रिय ह्वै गुरु लोगन के प्रतिपाल करै।
भूलिहु तो तिनके गुन औगुन जी न धरै॥

तौ हमको गुरुदोस नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमही सुख पाइ हती ॥ १७० ॥

शब्दार्थः—ह्वै =होकर। गुरुदोस=गुरु हत्या का। एक रती=किंचित भी। हती=मार डाली।

भावार्थः—(परशुराम प्रति लक्ष्मण का कथन) क्षत्रिय होकर यद्यपि हम गुरु लोगों की प्रतिपालना करते हैं और भूलकर भी उनके गुणा-वगुणों पर अपने मन में विचार नहीं करते। परन्तु क्योंकि तुमने अपनी माता को आनन्दित होकर मार डाला, अत अब हमें भी गुरु हत्या का पाप किंचित भी नहीं लगेगा। अर्थात् गुरुत्व के पाप पर विचार न करके हम तुमको मार डालेंगे।

गीतिका:—तब एक विंसति बेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड सोनित सौ भरे पितु तर्पनादि क्रिया सची॥
उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारि हौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़िहूँ धर्म निर्दय पारि हौं ॥ १७१ ॥

शब्दार्थः—एक विंसति बेर=इक्कीस बार। छत्र=राजा। सोनित=रक्त। सची=सम्पन्न की। सोधि-सोधि=खोज खोज कर। निर्दय पारि हौं=निर्दयता पूर्वक पालन करूँगा।

भावार्थः—तब तो मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को राजा विहीन कर दिया था और उन राजाओं को मार कर उनके रक्त से बहुत से कुण्ड भर कर पितरों की तर्पण क्रिया को सम्पन्न किया था (अर्थात् केवल राजाओं को ही मारा था तथा अन्य क्षत्रियों को छोड़कर उनके प्रति कुछ दया प्रदर्शित करती थी)। किन्तु जो भी क्षुद्र हृदय क्षत्रिय अब बच गये हैं उनको अब खोज खोज कर मार डालूँगा तथा अपने इस (क्षत्रिय संहार के) धर्म को इतनी निर्दयता से पालूँगा कि बालक, वृद्ध, अथवा युवक कोई भी हो, छोड़ूँगा नहीं।

बाण आपके पास हैं, उनको आप मुझपर, जिसने शंकर के धनुष को टुकडे टुकडे किया है, एक साथ छोड़िये । मैं उनकी अखण्ड धारा को सहूँगा । अर्थात् मैंने शंकर के धनुष को तोडने का अपराध किया है । अतः आप शाप अथवा शस्त्र, जिसका भी मुझे दण्ड देगें मैं स्वीकार करूँगा, किन्तु आपका सामना नहीं करूँगा, क्योंकि आप जगत पूज्य है ।

परशुराम-बान हमारेन के तनत्राण विचारि विचारि विरचि करे हैं ।
गोकुल ब्राह्मन नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाव भरे हैं ।।
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं ।
गाधि के नंद तिहारे गुरु जिनते ऋषि वेख किये उबरे हैं ।।१७५।।

शब्दार्थ:-तनत्राण=कवच अर्थात् जो बच सकें । गोकुल=गउओं का समूह । तिनको=उनसे (बाणों से) । अदेव=असुर । गाधि के नन्द= विश्वामित्र । उबरे हैं=बच सके हैं ।

भावार्थ:-(राम प्रति परशुराम) हमारे बाणो से बच सकें, ऐसे प्राणी तो ब्रह्मा ने विचार करके केवल चार ही प्रकार के बनाए हैं जो दीन स्वभाव वाले गऊ, ब्राह्मण, स्त्री तथा नपुंसक हैं । हे राम, मेरे उन बाणो से देवता और असुर भी भयभीत रहते हैं, जिसमें तुम तो अभी बालक ही हो । तुम उससे बचने का क्या उपाय करोगे । तुम्हारे गुरु विश्वामित्र भी उन बाणो से केवल ऋषि का वेष बनाकर ही बच सके हैं ।

राम—भगन भयो हर-धनुष साल तुमको अब सालै ।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईस आसन ते चालै ।
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारै ।
सप्त सिन्धु मिलि जाहि होहि सबहीं तम भारै ।।
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुडि जाहि बरु ।
भृगु नन्द सँभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त शुरु ।। १७६ ।।

शब्दार्थ:—साल=दुख । सालै=खटकना है । ईस=शंकर । आसन ते चालै=योगासन (समाधि) से डिग जाएँ । धर=पृथ्वी (धरा) ।

राम.—भृगुकुल-कमल-दिनेश मुनि, ज्योति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जस भार॥ १७२॥

भावार्थ—भृगुकुल रूपी कमल को उत्फुल्लित करने वाले सूर्य, हे परशुराम जी! आपके यश की ज्योति सम्पूर्ण संसार में फैली हुई है। आप अपने उस यश का भार इन बालकों पर क्यों डाल रहे हैं। यह भला इनसे क्योंकर चल सकेगा। अर्थात् अपने यश को आप इन बालकों द्वारा क्यों भंग करवाते हैं?

अलंकारः—अप्रस्तुत प्रशंसा तथा परम्परित रूपक।

परशुरामः—राम सुबंधु सँभारिए, छोड़त हौं सर प्रानहर।
देहु हथ्यारन डारि हाथ समेतनि बेगिदै॥ १७३॥

शब्दार्थः—सुबंधु=अपने भ्राताओं को। हाथ समेतनि=हाथों सहित। बेगिदै=शीघ्र ही।

भावार्थः—हे राम, अपने भाइयों को सम्भालो अन्यथा मैं प्राण हरण करने वाला बाण छोड़ता हूँ। हाथों समेत शीघ्र ही अपने हथियारों को डाल दो, (अर्थात् यदि हथियार डाल दिये तो मैं केवल हाथ ही काट कर चला जाऊँगा, अन्यथा मार दूँगा)।

अलंकारः—सहोक्ति (दूसरे चरण में)।

राम.—सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि।
तप विशिख असेसन की जो अग्नि।
सब विशिख छाँडि सहिहौं अखंड।
हर-धनुष कर्‌यो जिन खंड खंड॥ १७४॥

शब्दार्थ;—जामदग्नि=जमदग्नि ऋषि के पुत्र। तप विशिख=तपस्या के बाण अर्थात् श्राप। असेसन=सम्पूर्ण। सब विशिख=केवल एक ही बाण नहीं, अपितु जितने भी हैं वे सब।

भावार्थः—हे सम्पूर्ण लोकों के गुरु, जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम जी सुनो, तपस्या के सम्पूर्ण बाणों की अग्नि को तथा और भी जितने

बाण आपके पास हैं, उनको आप मुझपर, जिसने शंकर के धनुष को टुकडे टुकडे किया है, एक साथ छोडिये। मैं उनकी अखण्ड धारा को सहूँगा। अर्थात् मैंने शंकर के धनुष को तोडने का अपराध किया है। अत आप शाप अथवा अस्त्र, जिसका भी मुझे दण्ड देंगे मैं स्वीकार करूँगा, किन्तु आपका सामना नहीं करूँगा, क्योंकि आप जगत पूज्य हैं।

परशुराम—बान हमारेन के तनत्राण विचारि विचारि विरंचि करे हैं।
गोकुल ब्राह्मन नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाव भरे हैं॥
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरु जिनते ऋषि वेष किये उबरे हैं॥१७५॥

शब्दार्थ:—तनत्राण=कवच अर्थात् जो बच सकें। गोकुल=गउओं का समूह। तिनको=उनसे (बाणों से)। अदेव=असुर। गाधि के नन्द=विश्वामित्र। उबरे हैं=बच सके हैं।

भावार्थ:—(राम प्रति परशुराम) हमारे बाणों से बच सकें, ऐसे प्राणी तो ब्रह्मा ने विचार करके केवल चार ही प्रकार के बनाए हैं जो दीन स्वभाव वाले गऊ, ब्राह्मण, स्त्री तथा नपुंसक हैं। हे राम, मेरे उन बाणों से देवता और असुर भी भयभीत रहते हैं, जिसमें तुम तो अभी बालक ही हो। तुम उससे बचने का क्या उपाय करोगे। तुम्हारे गुरु विश्वामित्र भी उन बाणों से केवल ऋषि का वेष बनाकर ही बच सके हैं।

राम—भगन भयो हर-धनुख साल तुमको अब सालै।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईस आसन तें चालै।
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारैं।
सप्त सिन्धु मिलि जाहिं होहिं सबहीं तम भारैं॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुड़ि जाहि बरु।
भृगु नन्द सँभारु कुठार मैं कियो, सरासन युक्त गुरु॥ १७६॥

शब्दार्थ:—साल=दुख। सालै=खटकता है। ईस=शंकर। आसन ते चालै=योगासन (समाधि) से डिग जाएँ। धर=पृथ्वी (धरा)।

सब ही=सब जगह। ज्योति नारायणी=नारायण का अंश। बुझि जात=समाप्त हो जाए। वर=श्रेष्ठ।

भावार्थः–(रामचन्द्रजी क्रुध होकर परशुराम जी से कहते हैं) मैंने महादेव का धनुष तोड़ दिया है, इसका दुःख तुम्हें अब सटक रहा है, (और इसीलिए तुम मुझ से उलझ रहे हो) किन्तु तुम नहीं जानते कि यदि मैं चाहूँ तो विधाता की इस सृष्टि को नष्ट कर दूँ और महादेव को उनके ध्यानासन से डिगा दूँ। चौदह लोकों का संहार कर दूँ, शेषनाग के सिर से इस पृथ्वी को गिरादूँ। मेरी आज्ञा से सातों समुद्र (अपनी मर्यादा छोड़कर) मिलकर एकाकार हो जाएँ और (संसार में) सर्वत्र भयकर अन्धकार छा जाए, अर्थात मैं संसार में प्रलयकालिक भयानक दृश्य उपस्थित करदूँ। यदि मैं चाहूँ तो नारायण का वह अंश, जो अब तुममें केवल प्राण रूपी अति उज्ज्वल ज्योति के रूप में ही शेष है, को भी समाप्त करदूँ। हे भृगुनन्द! अब तुम अपना कुठार सँभाल लो, क्योंकि मैंने अपने धनुष को बाण से युक्त कर लिया है (अर्थात युद्ध के लिए तैयार हो जाओ)।

विशेषः–क्रोध प्रदर्शन के साथ ही राम परशुराम को स्वरूपज्ञान कराने के लिए यहाँ यह भी संकेत करते हैं कि तुममें अब नारायण का अंश नहीं रहा है। वह नारायणी शक्ति तुम्हारे स्थान पर अब मुझ में आगई है। अतः अब तुम इस मिथ्या गर्व को छोड़कर अपने आपको पहचानो।

स्वागत छंद–राम राम जब कोप करयो जू।
लोक लोक भय भूरि भरयो जू॥
वामदेव तब आपुन आये।
रामदेव दोउन समुझाये॥ १७७॥

शब्दार्थः–राम=रामचन्द्र। राम=परशुराम। भूरि=अत्यन्त। वामदेव=महादेव। आपुन=स्वयम्। रामदेव दोउन=राम एवं परशुराम दोनों को।

भावार्थः—सुगम है।

दोहा—महादेव को देखि कै, दोऊ राम विसेस।
कीन्हों परम प्रनाम उन, आसिस दियो असेस ॥१७८॥

भावार्थ—स्पष्ट है।

महादेवः—भृगुनन्दन सुनिए मन महँ गुनिए रघुनन्दन निर्दोषी।
निजु ये अविकारी सब सुखकारी सबही विधि सन्तोषी।
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो धनुष जो टूट्यो मैं तन मन सुख पायो ॥१७९॥

शब्दार्थः—महँ = में। निजु = निश्चय ही।। आयुर्बल खूट्यो = ईश्वरावतार होने का समय व्यतीत हो गया है।

भावार्थ—(महादेव परशुराम के प्रति) हे भृगुनन्दन ! मेरी बात को सुनकर उस पर मन में विचार करो। राम पूर्ण रूप से निर्दोष है। यह निश्चय ही विकारो से रहित, सबो को सुख देने वाले और सब प्रकार से सन्तोषी (इच्छा रहित) है। तुम दोनो एक ही हो, परस्पर पराये नहीं हो और (इसीलिए) दोनों का नाम भी एक ही है। अब तुम्हारा समय व्यतीत हो गया है (ईश्वरावतारी होने का), और मैंने भी धनुष के टूट जाने पर तन एवं मन दोनो ही दृष्टियो से सुख का अनुभव किया है, (तनकी दृष्टि से तो इसलिए कि अब मुझे पिनाक का भार नहीं ढोना पड़ेगा, और मन की दृष्टि से इसलिए कि राम जो मेरे इष्टदेव है उनके हाथ से धनुष टूटा है)।

तुम अमल अनन्त अनादि देव। नहिं वेद बखानत सकल भेव॥
सबको समान नहीं बैर नेहु। सब भक्तन कारन धरत देहु ॥१८०॥

भावार्थ—सरल है।

अब आपुनपो पहिचानि लिय। अब मेंटहु अर्गलो काम हिय॥
अब आयसदा को धनुष दीजि। भृगुनाथ दियो रघुनन्दन लीजि ॥१८१॥

शब्दार्थः—आपुनपो=अपने वास्तविक स्वरूप को । आगिलो=आगे का । छिप्र=शीघ्र ही । जानि=जान बूझकर (यह देखने के लिए कि ये नारायणावतार हैं अथवा नहीं) । पानि=हाथ ।

भावार्थः—(महादेव परशुराम से कहते हैं कि) हे ब्राह्मण ! अब तुम अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानो और शीघ्र ही आगे का कार्य करो (राम द्वारा पृथ्वी का भार उतारने का कार्य तथा तुम्हारी अपनी तपस्या आदि का कार्य) । तब (महादेव की इस बात को सुनकर) भृगुनाथ परशुराम ने नारायण का धनुष रघुनाथ के हाथ में जान बूझकर दिया (यह जानने के लिए कि वास्तव में राम में नारायण का अंश है अथवा नहीं) ।

नारायन को धनु बान लियो । ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो ॥
रघुनाथ कहेउ अब काहि हनो । त्रैलोक्य कँप्यो भयमान घनो ॥१८२॥

शब्दार्थ.—ऐंच्यो=संधान किया । काहि=किसको । हनों=मारूँ ।

भावार्थः—सरल है ।

दिग्देव दहे बहु बात बहे । भूकम्प भये, गिरिराज ढहे ॥
आकास विमान अमान छये । हा हा सबही यह शब्द रये ॥१८३॥

शब्दार्थ—दिग्देव=दिग्पाल । दहे=जलने लगे । बहुबात बहे=प्रबल पवन बहने लगी । ढहे=गिर गए । अमान=असंख्य । छये=छा गए । रये=रटने लगे ।

भावार्थः—स्पष्ट है ।

परशुरामः—जगगुरु जान्यो, त्रिभुवन मान्यो ।
　　मम गति मारो, हृदय विचारो ॥ १८४ ॥

शब्दार्थ—त्रिभुवन मान्यो=त्रिभुवन द्वारा मान्य (पूज्य) । ममगति मारो=मेरी गति (शक्ति) को नष्ट करदो । (ईश्वरावतार होने का जो मेरे अन्दर मिथ्या अहंकार है उसे नष्ट करदो) ।

भावार्थ—सरल है

दोहा—विषयी की ज्यों पुष्पशर, गनि को हनत अनग ।
गमदेव त्यौंही कियो परशुराम गति भग ॥ १८५ ॥

शब्दार्थः—पुष्पशर=पुष्पों के बाण से । हनत=नष्ट कर देता है । अनग=कामदेव ।

भावार्थ—स्पष्ट एव सुगम है ।

चतुष्पदी—सुरपति गति भानी सासन मानी भृगुपति को सुख भारो ।
आशिष रसभीने सब सुख दीने अब दसकठहि मारो ॥ १८६ ॥

शब्दार्थ:—सुरपति गति=विष्णु अवतारी होने का ज्ञान । भानी=भंग करदी । सासन मानी=आदेश मानकर (परशुराम का) आशिष रस भीने=आशीर्वाद के भाव से सिक्त होकर (परशुराम ने कहा) ।

भावार्थः—शब्दार्थ द्वारा स्पष्ट है ।

सवैया—ताडका तारि सुबाहु सँहार कै गौतम नारि के पातक टारे ।
चाप हत्यो हरको हँसि कै तब देव अदेव हुते सब हारे ।
सीतहि ब्याहि अभीत चल्यो गिरि गर्व चढ़े भृगुनन्द उतारे ।
श्री गरुडध्वज को धनु लै रघुनन्दन औधपुरी पगुधारे ॥ १८७॥

शब्दार्थ.—सुबाहु=एक असुर विशेष । गौतमनारि=अहिल्या । पातक टारे=पाप दूर किए । हत्यो=तोड़ा । हुते=थे । अभीत=निर्भय होकर । गिरि गर्व चढे=गर्व के पर्वत पर चढ़े हुए । श्री गरुडध्वज=विष्णु (नारायण) ।

भावार्थ—स्पष्ट है ।

अयोध्या-आगमन

घुघुली—सब नगरी बहु सोभ रये, जहँ तहँ मंगल चार ठये ।
बरनत हैं कविराज बने, तन मन बुद्धि विवेक सने ॥ १८८ ॥

शब्दार्थ—बहुसोभ रये=अति शोभा से रजित है । मंगलचार ठये=शुभ (मांगलिक) वस्तुएँ स्थापित की गई हैं । बने=बन ठन कर ।

भावार्थ—अयोध्या नगरी के सारे स्थान बहुत शोभा से रंजित हैं और जहाँ तहाँ सर्वत्र मांगलिक वस्तुएँ स्थापित हैं। यहाँ के कविगण, जो उनमें बसते हैं, मन से प्रसन्न और बुद्धि से विवेक युक्त हैं, उसका (नगरी का) वर्णन कर रहे हैं।

मोटनक:—ऊँची बहुवर्ण पताक लसैं। मानो पुर दीपति सी दरसैं।
देवीगण व्योम विमान लसैं। सोभैं तिनके मुख अंचल से ॥१८९॥

शब्दार्थ:—दीपति=सौन्दर्य छटा। मुख अंचल=घूँघट।

भावार्थ—अयोध्या के घरों पर ऊँची और बहुत से रंगों की पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं जो ऐसी दिखाई देती हैं मानो नगर के सौन्दर्य की छटा ही उनके (पताकाओं के) रूप में हो। अथवा आकाश में जो देवांगनाएँ सुशोभित हैं, उनके घूँघट ही (उन पताकाओं के रूप में) शोभित हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

तामरस:—घर घर घंटन के रव बाजैं। बिच बिच संख जु झालर बाजैं।
पटह पखाउज आवझ सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं ॥१९०॥

शब्दार्थ:—रव=शब्द। झालरि=घंटिकाएँ। पटह=युद्ध का नक्कारा। पखाउज=मृदंग। आवझ=तासे।

भावार्थ:—सुगम है।

तोटक:—बरखैं कुसुमावली एक घनि। शुभ शोभन कोमलता सी बनी।
बरखैं फल फूलन लायक की। जनु हैं तरुनी रतिनायक की ॥१९१॥

शब्दार्थ—एक=कोई एक स्त्री। शुभ शोभन=अत्यन्त सुन्दरी। कोमलता सी=मूर्तिमान कोमलता के समान। लायक=धान की खील। रतिनायक=कामदेव।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

—उत्प्रेक्षा।

मरहट्टा:—आनन्द प्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरा दौरी।
आरती उतारैं सरबस वारैं अपनी अपनी पौरी॥
पढ़ि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दे सविशेषैं।
कुंकुम-कर्पूरनि-मृगमद-चूरनि वर्षति वर्षा वेषैं॥ १६२॥

शब्दार्थ—प्रकासी=प्रकाशित करने वाले। तेः=वे। पौरी=द्वारदार। अशेषनि=सब प्रकार के। सविशेषैं। विशेष रूप से। कुंकुम=केसर। मृगमद=कस्तूरी। वर्षति=वर्षाते हैं। वर्षा वेषैं—वर्षा के रूप में।

भावार्थ:—स्पष्ट एवं सरल है।

त्रिभंगी—बाजे बहु बाजैं तारनि साजैं सुनि सुर लाजैं दुख भाजैं।
नाचैं नवनारी सुमन सिंगारी गति मनुहारि सुख साजैं॥
बीनानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन रिझावैं मन भावैं।
भूषन पट दीजैं सब रस भीजैं देखत जीजैं छवि छावैं॥१६३॥

शब्दार्थ:—तारनि साजैं=उच्चस्वर से गाते हैं। सब=अयोध्या के सारे दर्शक। रस भीजैं=प्रेम में भीगकर। देखत जीजैं=देखने के लिए (सुन्दर नर्तकियों को) और भी कुछ समय जीने की इच्छा करते हैं।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

सोरठा—रघुपति पूरण चन्द, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनन्द, ता दिन तें तेहि पुर बढ़ैं॥१६४॥

भावार्थ:—सरल है।

अयोध्या-कांड

राम-वन-गमन

दोहा:-रामचन्द्र लक्ष्मण सहित, घर राखे दशरत्थ।
बिदा कियो ननसार को, संग शत्रुघ्न भरत्थ॥ १॥

भावार्थ:-महाराजा दशरथ ने रामचन्द्र जी को लक्ष्मण के साथ घर (अयोध्या में) अपने पास रखा और भरत को शत्रुघ्न के साथ ननसार जाने के लिए विदा किया।

तोटक:-दशरत्थ महामन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठहिं मंत्र लये।
दिन एक कहो शुभ शोभरयो। हम चाहत रामहि राज दयो॥२॥

शब्दार्थ:—मोद रये—प्रसन्नता से रंजित। मंत्र लये—मन्त्रणा की। शोभ रयो=सुन्दर।

भावार्थ—सरल है।

तोटक.-यह बात भरत्थ की मात सुनी। पठऊँ बन रामहि बुद्धि गुनी।
तेहि मन्दिर में नृप सों विनयो। वरदेहु, हुतो हमको जो दियो॥३॥

शब्दार्थ.—बुद्धि गुनी=बुद्धि विचारी। हुतो=था।

भावार्थ:—सरल है।

नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जो दियो॥
"नृपता सुविशेष भरत्थ लहैं। बरषै बन चौदह राम रहैं"॥ ४॥

शब्दार्थ.—हेरहियो=हृदय में स्मरण करके। सुविशेष=विशेष रूप से।

भावार्थ:—सरल है।

पद्धटिका.-यह बात लगी उर वज्र तूल। हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल॥
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम। तजि तात मात तिय बंधु धाम॥५॥

शब्दार्थ.—तूल=तुल्य, समान । जीरन दुकूल=पुराना वस्त्र । कहँ=को ।

भावार्थ:—सरल है ।

कौशल्या और राम का सम्वाद

गये तहँ राम जहाँ निज मात ।
कही यह बात कि हौं बन जात ।।
कछू जनि जी दुख पावहुँ माइ ।
सो देहु असीष मिलौं फिर आइ ।। ६ ।।

कौशल्या:—रहौ चुप ह्वै सुत क्यो बन जाहु ।
न देखि सकै तिनके उर दाहु ।
लगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ ।
करै उलटी विधि क्यो कहि जाइ ।। ७ ।।

शब्दार्थ—जनि=मत । तिनके उर दाहु=उनके हृदय जल जाएँ । लगी अब······बाइ=तुम्हारे पिता इस अवस्था में पागल हो गए हैं । विधि=रीति, काम ।

भावार्थ—स्पष्ट है ।

रामः—अन्न देइ सीखदेइ राखि लेइ प्राण जात ।
राज बाप मोल लै करै जो दीह पोखि गात ।।
दास होइ पुत्र होइ शिष्य होइ कोइ माइ ।
शासना न मानहिं तो कोटि जन्म नर्क जाइ ।। ८ ।।

शब्दार्थ:—दीह=बडा । शासन=आदेश, आज्ञा

भावार्थ.—स्पष्ट है ।

कौशल्या—मोहिं चलौ वन संग लियें, पुत्र तुम्हें हम देखि जियें ।
औधपुरी महँ गाज परै, कै अब राज भरत्थ करै ।। ९ ।।

शब्दार्थ:—गाज परै=बिजली पड़े । कै=चाहे ।

कहूँ अहि हरि, कहूँ निसिचर चरहीं।
कहूँ दव दहन दुसह दुख दहीं ॥ १४॥

शब्दार्थ—गह्वर=अंधकार पूर्ण गुफाएँ। अगमाँह=न चलने योग्य। अहि=सर्प। हरि=सिंह। दव-दहन=दावाग्नि।

भावार्थ—सरल है।

सीता—केशौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास।
दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै॥
वायु को वहन दिन दावा को दहन, बड़ी।
बाड़वा-अनल ज्वाल-जाल में रह्यो परै॥
जीरन जनम जात जोर जुर घोर पीर।
पूरण प्रकट परिताप क्यों कह्यो परै॥
सहिहौं तपन ताप पति के प्रताप, रघु-
बीर को बिरह बीर मोसों न सह्यो परै॥ १५॥

शब्दार्थ—गह्यो परै=ग्रहण किया जा सकता है। वहन=झोंके। दिन=प्रतिदिन। दहन=ताप। जीरन=पुराना। जन्मजात=जन्म के साथ से ही पैदा हुआ। जोर जुर घोर=भयानक एवं प्रचण्ड ज्वर। परि-ताप=कष्ट। क्यों कह्यो परै=कैसे कहा जा सकता है ? तपन ताप=सूर्य की धूप।

भावार्थ—(सीता का लक्ष्मण के प्रति कथन) मैं नींद, भूख, प्यास, दूसरों की व्यंगपूर्ण हँसी, भय तथा यहाँ तक कि दुख का निवास विष भी खा सकती हूँ। पवन के प्रचण्ड झोंके, प्रतिदिन दावाग्नि की जलन भी सह सकती हूँ और यहाँ तक कि भयङ्कर बाड़ाग्नि की ज्वालाओं के समूह में भी रह सकती हूँ। प्राचीन, जन्म-जात, भयङ्कर एवं प्रचण्ड ज्वर की पीड़ा को भी, जिसके पूर्ण कष्ट का वर्णन नहीं किया जा सकता, मैं सह सकती हूँ। अपने पति के प्रताप से मैं सूर्य की (प्रखर) धूप भी सह सकती हूँ, किन्तु हे भाई श्री रघुवीर का विरह मैं सहन नहीं कर सकती।

अलंकार:—अनुप्रास और परिकर।

लक्ष्मण के प्रति राम का उपदेश

राम—आप कह्यो तुम लक्ष्मण राज की सेव करो।
मातनि के सुनि तात सु दीरघ दुख हरो॥
आइ भरत्थ कहा धौं करें जिय भाय गुनो।
जो दुख देहिं तो लै उरगो, यह बात सुनो॥ १६॥

शब्दार्थ—राज=राजा (दशरथ)। सेव=सेवा। सुनि=सुनो। जिय भाय गुनो=अपने मन में उनके (हृदय के) भाव को भली प्रकार समझो। लै उरगो=लेकर हृदय में अंगीकार करो।

भावार्थ:—सरल है (छंद-विशेषक है।)

लक्ष्मण:—शासन मेट्यो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिए, घर सेवक वन नाथ॥ १७॥

भावार्थ:—(लक्ष्मण रामचन्द्रजी से कहते हैं कि) मैं आपकी आज्ञा किस प्रकार भंग कर सकता हूँ अर्थात् आपकी आज्ञानुसार मैं घर रहूँगा ही, किन्तु जीवित रहना अथवा जीवित न रहना, यह मेरे आधीन है; क्योंकि यह बात भला किस प्रकार समझ में आ सकती है कि सेवक तो घर पर आनन्दपूर्वक रहे और स्वामी वन वन में भटक कर कष्ट उठाए। तात्पर्य यह है कि यदि आप आज्ञा देंगे तो मैं घर पर रहूँगा ही, किन्तु यह बात निश्चित है कि यहाँ रह कर जीवित न रहूँगा, आत्मघात कर लूँगा।

वन-गमन-वर्णन

द्रुतविलंबित:—विपिन-मारग राम विराजहीं। सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं॥
विविध श्रीफल सिद्ध मनो फल्यो। सकल साधन सिद्धिहिं लै चल्यो॥१८

शब्दार्थ—भ्राजहीं=सुशोभित होते हैं। श्रीफल=तपस्या के सुन्दर फल।

भावार्थ —वन पथ पर राम शोभायमान हो रहे हैं, साथ में सुख देने वाली पत्नि (सीता) और भाई (लक्ष्मण) भी सुशोभित हो रहे हैं।। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई सिद्ध पुरुष अपनी तपस्या में सफल होकर शोभा पा रहा हो और अपने सम्पूर्ण साधनो एव प्राप्त की हुई सिद्धियो को साथ लेकर जा रहा हो। (स्वयम् राम सिद्ध पुरुष, लक्ष्मण साधन और सीता प्राप्त सिद्धियाँ।)

अलंकार:— उत्प्रेक्षा।

दोहा,—राम चलत सब पुर चल्यो, जहँ तहँ सहित उछाह।
मनो भगीरथ—पथ चल्यो, भागीरथी—प्रवाह॥ १६॥

भावार्थ—सरल है।

चंचला:—रामचन्द्र धाम ते चले सुनै जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै, सो ह्वै गये महा बिहाल॥
ब्रह्मरध्र फोरि जीव यों मिल्यो द्युलोक जाइ।
गेह चूरि ज्यों चकोर चन्द्र मैं मिलै उडाइ॥ २०॥

शब्दार्थ.—नृपाल=राजा दशरथ ने। बिहाल=व्याकुल। ब्रह्म रध्र= ब्रह्मांड, मस्तक। द्युलोक=बैकुंठ। गेह=पिंजड़ा। चूरि=तोड़कर।

भावार्थ—स्पष्ट है।

अलंकार.—उदाहरण।

जगमोहन दंडक—किधौं यह राजपुत्री, वरही वरी है, किधौं
उपदि वर्‌यो है यहि सोभा अभिरत हो।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसौदास,
जात तपोवन सिव बैर सुमिरत हो।
किधौं मुनि शापहत, किधौं ब्रह्मदोषरत,
किधौं सिद्धियुत, सिद्ध परम बिरत हो।
किधौं कोऊ ठग हो ठगोरी लीन्हें, किधौं तुम,
हरि हर श्री हो शिवा चाहत फिरत हो॥ २१॥

शब्दार्थः—बरही=बलपूर्वक। वरी है=विवाह किया है। उनहि वर्यो है यहि=इसने गुरुजनों की इच्छा के विरुद्ध तुम्हारा वरण किया है। अभिरत हो=युक्त हो। जस=यश (संसार विजयी होने का)। विरत=विरक्त। ठगोरी=ठग विद्या। शिवा=पार्वती। चाहत=खोजते हुए।

भावार्थः—(वन पथ में लोग राम से प्रश्न करते हैं) या तो इस राजपुत्री के साथ तुमने बलपूर्वक विवाह किया है, अथवा इसने ही गुरुजनों की इच्छा के विरुद्ध, स्वेच्छा से तुम्हारा वरण किया है, तुम ऐसी शोभा से युक्त हो। या तुम तीनो रति, कामदेव और उसका (विश्व विजयी होने का) यश हो और शिव के बैर का स्मरण करके तपोवन की ओर जा रहे हो। अथवा तुम कोई ऋषि द्वारा शापित व्यक्ति हो, या किसी ब्राह्मण के अनिष्ट करने में दत्तचित्त हो (इसी से वेष बदले हो) अथवा तुम कोई सिद्धिप्राप्त विरक्त परम सिद्ध पुरुष हो। अथवा तुम ठग विद्या लिए हुए कोई ठग हो, या तुम तीनो विष्णु, महादेव तथा लक्ष्मी हो जो (वन में खोई हुई) पार्वती को खोजते फिरते हो।

अलंकारः—सन्देह।

मेघ-मंदाकिनी चारु सौदामिनी, रूप रूरे लसैं देहधारी मनौ।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा, अंस के हैं मनौ भाग भारे मनौ॥
देवराजा लिये देवरानी मनौ, पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।
पच्छ द्वू संधि संध्या सधी हैं मनौ, लच्छि ये स्वच्छ प्रत्यच्छ ही मोहिए॥२२॥

शब्दार्थ—मंदाकिनी=आकाश गंगा। सौदामिनी=बिजली। रूरे=सुन्दर। देहधारी=देह धारण करके। भूरि=अनेक। भागीरथी=गंगा। भारती=सरस्वती। हंसजा=यमुना। देवराजा=इन्द्र। देवरानी=इन्द्राणी। पुत्र=जयन्त। पच्छ द्वू=दोनों पक्ष (कृष्ण एवं शुक्ल) सधी है=विद्यमान है। लच्छिये=देखते है।

भावार्थ—(वन पथ में राम, सीता और लक्ष्मण ऐसे लगते हैं) मानो मेघ, आकाशगंगा और बिजली ही देहधारण करके सुन्दर रूप में सुशोभित

हो रहे हों, अथवा ये गंगा, सरस्वती और यमुना के ही देहधारी अंश हैं। जो व्यक्ति इनका दर्शन करते हैं, उनका परम सौभाग्य है। अथवा इन्द्र इन्द्राणी और अपने पुत्र जयन्त को साथ लिए हुए भूलोक में शोभित हो रहे है। अथवा (कृष्ण एवं शुक्ल) दोनों पक्षों की सधि को (तीनों) सन्ध्याएँ पास पास एकत्रित हो जिनके निर्मल स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर मन मोहित हो जाता है।

विशेष—सामवेदी तीन सध्याएँ मानते हैं, जिनमें प्रातः सन्ध्या का रंग लाल, मध्यान्ह सध्या का रग श्वेत और साय सन्ध्या का रग श्याम माना गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। (छन्दः—मत्त-मातंग लीला-करन दंडक)

> तडाग नीर-हीन ते सनीर होत केशोदास,
> पुंडरीक-भुंड भौंर-मंडलीन मंडहीं।
> तमाल वल्लरी समेत सूखि सूखि के रहे,
> ते बाग फूलि फूलिकैं समूल सूल खंडहीं॥
> चितैं चकोरनी चकोर, मोर मोरनी समेत,
> हंस हंसिनी समेत, सारिका सबै पढ़ैं।
> जहीं जहीं विराम लेत रामजू तहीं तहीं,
> अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ैं॥ २३॥

शब्दार्थ—ते=वे। पुंडरीक=कमल। सूल=दुख। चितैं=देखती है। विराम=विश्राम। भाग सों=भाग्य के समान।

भावार्थ—स्पष्ट है (छंद-अनंग शेखर दंडक)

सुन्दरी:-घाम को राम समीप महाबल। सीतहिं लागत है अति दीरघ॥
ज्यों घन-संयुत दामिनि के तन। होत है पूषन के कर भूषन॥२४॥

शब्दार्थः—घाम=धूप। महाबल=प्रचण्डता। पूषन के कर=सूर्य की किरणें।

भावार्थः—सरल एवं स्पष्ट है।

भरत का प्रत्यागमन

दोधक—आनि भरत्त पुरी अवलोकी। थावर जंगम जीव समोकी॥
भाट नहीं बिरदावलि साजैं। कुंजर गाजैं न दुन्दुभि बाजैं॥२९॥
राजसभा न बिलोकिय कोऊ। सोक गहे तब सोदर दोऊ।
मंदिर मातु बिलोकि अकेली। ज्यों बिन वृक्ष बिराजति बेली॥ ३०॥

तोटक.—तब दीरघ देखि प्रनाम कियौ। उठि कै उन कंठ लगाइ लियौ॥
न पियौ जल संभ्रम भूलि रहे। तब मातु सौं बैन भरत्थ कहे॥३१॥

शब्दार्थ.—थावर=जड़। जंगम=चेतन। कुंजर=हाथी। बिन वृक्ष बिराजत बेली=बिना आधार के लता के समान पृथ्वी पर पड़ी हुई। दीरघ देखि प्रनाम कियौ=लम्बायमान होकर दण्डवत किया। उन=कैकेयी ने। संभ्रम=भ्रमयुक्त।

भावार्थ.—सरल है।

भरत—कैकेयी—सम्वाद

विजय:—"मातु! कहाँ नृप?" "तात! गये सुर-
लोकहिं" "क्यों?" "सुत-शोक लये॥"
"सुत कौन?" "सुराम" कहाँ हैं अबै?"
"बन लक्ष्मण सीय समेत गये॥"
"बन काज कहा कहि?" "केवल मो सुख,"
"तोको कहा सुख यामैं भये?"
"तुमको प्रभुता" "धिक तोको!
कहा, अपराध बिना सिगरेई हये?" ॥ ३२॥

शब्दार्थ.—प्रभुता=राज्याधिकार। धिक=धिक्कार है। सिगरेई=सबों को। हये=मारा है।

भावार्थ.—स्पष्ट है।

दोहा:-"भर्ता-सुत-विद्वेषिनी, सब ही को दुख दाइ।"
यह कहि देखे भरत तब, कौशल्या के पाइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—भर्ता=पति । विद्वेपिनी=अत्यन्त अधिक द्वेष वाली । पाइ=चरण । देखे ·····पाइ=भरत ने कौशल्या के पास ज उनका चरण स्पर्श किया ।

भावार्थ—स्पष्ट है ।

भरत-कौशल्या-सम्वाद

तोटक:-तब पायन जाइ भरत्थ परे । उन भेंटि उठाइ कै अंक भरे ॥
सिर सूंघि, विलोक बलाइ लयी । सुत तो बिन या विपरीत भयी ॥

भरत:-सुनु मातु भयी यह बात अनैसी ।
जु करी सुत-भर्तृ विनाशनि जैसी ॥
यह बात भयी अब जानत जाके ।
द्विज दोप परें सिगेर सिर ताके ॥३५॥

जिनके रघुनाथ-विरोध बसै जू ।
मठ धारिन के तिन पाप ग्रसै जू ॥
रस राम रस्यों मन नाहिन जाको ।
रन में नित होय पराजय ताको ॥३६॥

कौशल्या:—जनि सौंह करो तुम पुत्र सयाने ।
अति साधु चरित्र तुम्हें हम जाने ॥
सबकों सब काल सदा सुखदाई ।
जिय जानति हौं सुत ज्यों रघुराई ॥ ३७ ॥

भावार्थ-सिर सूंघि=वात्सल्य प्रेम प्रकट करने की प्राचीन प्रणाली। बलाइ लयी=बलिहारी गई । या विपरीत भयी=यह उल्टी (अमर्यादित) .. हो गई । अनैसी=अनिष्टपूर्ण । भर्तृ-विनाशनि=पति को नष्ट करने . । जानत जाके=जिसके जानते हुए । द्विजदोप=ब्रह्म हत्या का पाप।

रस राम=राम प्रेम । रस्यो=भीगा । जनि=मत । ज्यों रघुराई=राम के समान ।

भावार्थ—पूर्ण स्पष्ट है ।

दशरथ-दाह

चंचरी—'हाइ' 'हाइ' जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी ।
घाम धामनि सुन्दरी प्रगटी सबै जे हुती दुरी ।।
लै गये नृपनाथ को शव लोग श्री सरयू तटी ।
राजपत्नि समेत पुत्रन विप्रलाप गढ़ी रटी ।। ३८ ।।

शब्दार्थ:—सिगरी=सम्पूर्ण । जे हुती दुरी=जो छिपी रहती थी । विप्रलाप=प्रलाप पूर्ण रुदन । गढ़ी=समूह । रटी=रटने लगे ।

भावार्थ:—सरल है ।

सोमराजी:—करी अग्नि अर्चा, मिटी प्रेत चर्चा ।
सबै राजधानी, भई दीन बानी ।। ३९ ।।

शब्दार्थ.—अग्नि अर्चा=दाह क्रिया । प्रेत चर्चा=प्रेमकृत्य, शव सस्कार । भयी दीन बानी=दीन स्वर में रुदन करने लगे ।

भावार्थ.—सुगम है ।

कुमार ललित—क्रिया भरत कीनी, वियोग रस भीनी ।
सजी गति नवीनी, मुकुंद पद लीनी ।।४०।।

शब्दार्थ:—क्रिया=मृतक क्रिया । कीनी=की । वियोग रस भीनी= वियोग के दुख में निमग्न होकर । सजी=पाई । मुकुंद पद=मुक्ति ।

भावार्थ:—स्पष्ट ।

भरत का चित्रकूट गमन

तोटक:—पहिरे बकला सुजटा धरिकै । निज पाँयनि पथ चले अरिकै
घरि गग गये गुह संग लिये । चितवूट विलोकत छाँडि दिये ।।४१।।

शब्दार्थः—बकला=बल्कल। पाँयनि=पैदल ही। ग्ररिकै=ग्राग्रह करके। गुह=गुहराज (केवट)। छाँडि दिये=छोड़ कर ग्रागे बढ़े।

भावार्थः—स्पष्ट है।

सब सारस हंस भये खग खेचर, वारिद ज्यों बहु वारन गाजे।
वन के नर वानर किन्नर बालक लै, मृग ज्यों मृगनायक भाजे॥
तजि सिद्ध समाधिन केशव दीरघ, दौरि दरीन में ग्रासन साजे।
भूतल भूधर हाले ग्रचानक ग्राइ भरत्थ के दुंदभि बाजे॥ ४२॥

शब्दार्थः—भये खग खेचर=पक्षी ग्राकाश में उड़ गए। वारिद ज्यों=बादल के समान। वारन=हाथी। मृगनायक=सिंह। दरीन=कन्दराएँ।

भावार्थः—जब भरत ग्रपनी सेना सहित चित्रकूट के निकट के वन में ग्राये तो उनकी सेना के नक्काड़ों की ध्वनि ग्रौर हाथियों की बादल के समान गम्भीर गर्जना को सुनकर सारस तथा हंस ग्रादि सारे पक्षी ग्राकाश में उड़ गए तथा वन के नर वानर एवं किन्नर ग्रादि सारे प्राणी ग्रपने २ बालकों को लेकर इस प्रकार भाग खड़े हुए जैसे सिंह मृग को लेकर भाग जाता है। सिद्ध पुरुषों ने ग्रपनी दीर्घकालिक समाधियों को त्याग दिया ग्रौर उन्होंने दौड़कर कन्दराग्रों में ग्रपने ग्रासन लगा लिए तथा सहसा पृथ्वी ग्रौर पर्वत विकंपित हो उठे।

राम—भरत—मिलन

कुसुमविचित्राः—तब सब सेना वहि थल राखी।
मुनि जन लीन्हे संग ग्रभिलाखी॥
रघुपति के चरनन सिर नाये।
उन हँसि के गहि कंठ लगाये॥ ४३॥

शब्दार्थः—ग्रभिलाषी=ग्रपनी इच्छानुसार चुने हुए।

[illegible]—सरल है।

भरत:—घर को चलिए अब श्री रघुराई ।
जन हौं, तुम राज सदा सुखदाई ॥
यह बात कही जल सौं गल भीन्यौ ।
उठि सोदर पाइँ परे तब तीन्यौ ॥ ४४ ॥

श्रीराम:—राज दियो हमको वन रूरो ।
राज दियो तुमको अब पूरो ॥
सो हमहूँ तुमहूँ मिलि कीजै ।
बाप को बोल न नेकहु छीजै ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ:—जन हौं=मैं आपका दास हूँ । राज=राजा । जल सौं गल भीन्यौ=आँसुओं के वेग से कण्ठ अवरुद्ध हो गया । तीन्यौ=तीनों भाई (भरत, लक्ष्मण, तथा शत्रुघ्न) । राज=राजा ने । रूरो=सुन्दर । मिलि कीजै=मिल कर ऐसा काम करें । बोलु=वचन, बात । छीजै=भंग हो ।

भावार्थ:—सरल है ।

दोहा—राजा को अरु बाप को, बचन न मेटै कोइ ।
जो न मानिए भरत तौ, मारे को फल होइ ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ.—मारे को फल होइ=हत्या का पाप लगता है ।

भावार्थ—स्पष्ट है ।

भरत—मद्यपानरत स्त्रीजित होई । सन्निपातयुत बातुल जोई ।
देखि देखि तिनको सब भागैं । तासु बात हति पाप न लागै ॥४७॥

ईश ईश जगदीश बखान्यो । वेद वाक्य बल ते पहिचान्यो ।
ताहि मेटि हठिकै रहिहौं जौ । गंग तीर तन को तजिहौं तौ ॥४८॥

शब्दार्थ—मद्यपान रत=शराबी । स्त्रीजित=स्त्री के वशीभूत । सन्निपातयुत=प्रलाप करने वाला । बातुल=व्यर्थ की बकवास करने वाला । देखि······सब भागैं=उपेक्षित, घृणित । तासु बात हति=

उसके वचन तोड़ने में । ईश=विष्णु । जगदीश=ब्रह्मा । बखान्यो=(ऐसा) कहा है । ताहि मेटि=उनके कथन को मेट कर । हठि कै रहि हौं जो=यदि जबरदस्ती (आपके आदेश से) मुझे (अयोध्या में) रहने के लिए विवश किया गया तो ।

भावार्थ:—सरल है ।

दोहा:—मौन गही यह बात कहि, छोड्यौ सर्व विकल्प ।
भरत जाइ भागीरथी तीर, कर्‌यौ संकल्प ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ:—विकल्प=विचार । भागीरथी=गंगा (चित्रकूट स्थित मंदाकिनी) । कर्‌यौ संकल्प=शरीर त्याग का निश्चय किया ।

भावार्थ:—स्पष्ट है ।

भागीरथी का भरत को उपदेश

भागीरथी रूप अनूपकारी । चन्द्राननी लोचन-कंज-धारी ॥
वाणी बखानी मुख तत्व सोध्यौ । रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यौ ॥५०॥

शब्दार्थ:—अनूपकारी=अनुपम । तत्व=सार, सिद्धान्त । सोध्यौ=विचार कर । रामानुजै=राम का छोटा भाई (भरत) । प्रबोध=ज्ञान । बोध्यो=समझाया ।

भावार्थ:—स्पष्ट एवं सरल है ।

अनेक ब्रह्मादि न अन्त पायो । अनेकधा वेदन गीत गायो ॥
तिन्है न रामानुज बंधु जानो । सुनो सुधी केवल ब्रह्म मानो ॥५१॥

निजेच्छया भूतल देह धारी । अधर्म-संहारक धर्मचारी ॥
चले दशग्रीवहि मारिबे को । तपी व्रती केवल पारिबे कों ॥ ५२ ॥
उठो हठी होहु न काज कीजै । कहै कछू राम सो मानि लीजै ॥
अदोष तेरी सुत मातु सोहै । सो कौन माया इनको न मोहै ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ:—अनेकधा=अनेक प्रकार से । तिन्हैं=इन राम को । बं—[illegible] भरत । निजेच्छया=अपनी इच्छा से । तपी=तपस्वी । [illegible]रिबे को=पालन करने के लिए । सो कौन=ऐसा कौन है ।

भावार्थ—सरल है।

दोहा—यह कहि कै भागीरथी, केसव भई अदृष्ट।
भरत कह्यो तब राम सो देहु पादुका इष्ट ॥५४॥

शब्दार्थः—भई अदृष्ट=अन्तर्धान हो गई। इष्ट=पूज्य, प्रिय।

भावार्थः—सुगम है।

भरत का लौटना

चले बली पावन पादुका लै। प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै॥
गये ते नदीपुर बास कीनो। सबधु श्रीरामहि चित्त दीनो॥ ५५॥

शब्दार्थ—बली=शक्ति ग्रहण करके (पादुकाओं से)। प्रदक्षिणा=परिक्रमा। सबधु=शत्रुघ्न सहित।

भावार्थः—स्पष्ट है।

दोहाः—केसव भरतहि आदि दै, सकल नगर के लोग।
बन समान घर-घर बसें, सकल विगत सभोग॥ ५६॥

शब्दार्थ—आदि दै=इत्यादि। बन समान=बनवासियों की भाँति। विगत=छोड़कर। सकल सभोग=सम्पूर्ण भोग की वस्तुओं को।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

—:o:—

अरण्य-कांड

राम-अत्रि मिलन

चित्रकूट तब रामजू तज्यो। जाइ यज्ञथल अत्रि को भज्यो॥
राम लक्ष्मण समेत देखियो। आपनो सफल जन्म लेखियो॥ १॥

भावार्थ–(भरत के विदा होने के उपरान्त) तब रामचन्द्रजी चित्रकूट पर्वत को छोड़कर अत्रिऋषि के आश्रम में पहुँचे। अत्रिऋषि ने लक्ष्मण सहित जब राम के दर्शन किए तो अपना जन्म सफल समझा।

स्नान दान तप जाप जो करियो। सोधि सोधि पन जो उर धरियो।
योग याग हम जा लगि गहियो। रामचन्द्र सब को फल लहियो॥२॥

शब्दार्थ—पन=व्रत, प्रतिज्ञा। याग=यज्ञ। जा लगि=जिसके (दर्शन के) लिए।

भावार्थः—(अत्रि जी राम-दर्शन द्वारा अपना सौभाग्य मानते हुए कहते हैं) हमने जो स्नान, दान, तप और जाप किया और विचार पूर्वक शुद्धता सहित जो व्रत अपने हृदय में धारण किया, तथा जिसके लिए हमने योग और यज्ञादि ग्रहण किए, उन सबका फल (आज) राम-दर्शन के रूप मे प्राप्त कर लिया (यह हमारा परम सौभाग्य है)।

अनेकधा पूजन अत्रिजू कर्यो। कृपालु, ह्वै श्री रघुनाथजू धर्यो।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ। सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ॥ ३॥

शब्दार्थ–कृपालु ह्वै=कृपा करके। धर्यो=ग्रहण किया। देवि=अत्रि की पत्नि अनसूया।

भावार्थ.—स्पष्ट एव सरल है।

सीता-अनसूया-मिलन

दोहा—पतिव्रतन की देवता अनसूया शुभ गात।
सीताजू अवलोकिया जरा सखी के साथ ॥ ॥

भावार्थ—पतिव्रता स्त्रियो मे देवी स्वरूपा प्रशंसनीय आचरण वाली (भगिरनी) अनसूया को सीताजी ने जरा (वृद्ध अवस्था) रूपी सखी के साथ देखा अर्थात् अत्यन्त वृद्ध अवस्था मे देखा।

सिर श्वेत विराजै कीरति राजै जनु केशव तप बल की।
तनु वलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थल थल की ॥
काँपति शुभ ग्रीवा सब अंग सीवा देखत चित्त भुलाही।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति या जग मे कछु नाहीं ॥५॥

शब्दार्थ—वलित=युक्त। पलित=झुर्रियां। शुभग्रीवा=सुन्दर गर्दन। सीवा=सीमा (सौन्दर्य की)

भावार्थ—श्वेत बालो से युक्त सिर ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो तपस्या का यश ही सिर पर विराज रहा हो। सारा शरीर झुर्रियो से युक्त है, मानो सारे अंगो की वासना निकल गई हो (और उन्ही का स्थान झुर्रियो के रूप में रिक्त पड़ा हो)। (वृद्धावस्था के कारण) उनकी वह सुन्दर गर्दन काँप रही है, जो किसी समय सारे अंगो की सुन्दरता की सीमा थी, और जिसके कम्प को देखकर दर्शको का चित्त भ्रम मे पड़ जाता था। उस गर्दन के निषेधात्मक रूप मे हिलने को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो अनुसूया जी अपने मन को यह उपदेश दे रही है कि इस जग मे कोई सार नहीं है।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा।

हरवाइ जाय सिय पाइँ परी। ऋषि-नारि सूँघि सिर गोद धरी ॥
बहु अंगराग अंग अंग रये। बहु भाँति ताहि उपदेश दये ॥६॥

शब्दार्थ—हरवाई=शीघ्रतापूर्वक। बहु अंग राग अंग अंग रये=नाना प्रकार के अंग रागों से (अनुसूयाजी ने) सीताजी के अंग प्रत्यंगों को भार-जित किया। ताहि=सीताजी को।

भावार्थ —सुगम ही है।

विराध—वध

स्त्राग्वनी:-राम आगे चले, मध्य सीता चली।
बंधु पाछे भये, सोम सोभे भली॥
देखि देही सबै कोटिधा कै भनी।
जीव—जीवेस के बीच माया मनौ॥७॥

शब्दार्थ:—देही=देहधारी लोग। कोटिधाकै=करोडों प्रकार से। भनौ=वर्णन किया। जीव-जिवेश=प्राणी तथा ब्रह्म।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

मालती.—विपिन विराध बलिष्ठ देखियो। नृप तनया भयभीत लेखियो॥
तब रघुनाथ बाण कै हयो। निज निर्वाण—पंथ को ठयो॥८॥

शब्दार्थ:—नृप तनया=सीता। लेखियो=समझकर। हयो=मारा। निजनिर्वाण—पंथ को ठयो=अपना निर्वाण—मार्ग अर्थात् मुक्ति प्रदान की।

भावार्थ:—सरल है।

पंचवटी—वन—वर्णन

त्रिभंगी:—फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल—कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी वन वन प्रति नाचति डोलैं॥
सारी शुक पंडित, गुण गण-मंडित भावनमय अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरति मधु सब जानैं॥६॥

शब्दार्थ:—पूरे=परिपूर्ण। रूरे=सुन्दर। कुल=समूह। सारी=मैना मंडित=सुशोभित। भावनमय=प्रेम भाव से युक्त। सहायक=लक्ष्मण जी। मधु=बसन्त।

भावार्थ:—स्पष्ट एवं सुगम है।

:—सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निपटी रुचि मीच घटी हू घटी, जग जीव यतीन की छूटि तटी॥

अघ-ओघ की बेरि कटी बिकटी, निकटी प्रगटी गुरुज्ञान गटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वन पंचवटी ॥१०॥

शब्दार्थ —दुर्पटि=दुपट्टा । घटी=घडी । निघटी=निश्चय ही घट जाती है । रुचिमीचु=मृत्यु की इच्छा । घटी हू घटी=प्रति घडी । तटी=तटस्थता, समाधि अवस्था । अघ=पाप । ओघ=समूह । बेरि=बेडी, जंजीर । निकटी=समीप पहुँचने पर । गुरुज्ञान गटि=भारी ज्ञान की गठरी । नटी=नर्तकी । धूरजटी=महादेव ।

भावार्थ.–(लक्ष्मण कहते हैं कि) इस पंचवटी नामक वन में शिव के से गुण हैं । (जिस प्रकार शिव के दर्शनों से दुख नहीं रहता उसी प्रकार) इस वन की शोभा देखते ही दुख की चादर फट जाती है और इस वन में पहुँच कर कोई भी मनुष्य कपटी नहीं रहने पाता अर्थात् यहाँ की निश्छल प्राकृतिक शोभा के बीच पहुँचकर मनुष्य के हृदय का सम्पूर्ण कपट का भाव स्वतः समाप्त हो जाता है और (जिस प्रकार शिव के निकट पहुँचने पर मनुष्य मुक्ति की कामना भी छोड देता है तथा ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिए समाधिस्थ होने की आवश्यकता भी उसे नहीं रहती, उसी प्रकार) इस वन में पहुँचने पर संसार के प्राणियों की मरने की रुचि भी प्रति घडी घटती है और यति आदि लोगों की समाधि-अवस्था भी छूट जाती है, अर्थात् इस वन में पहुँचने पर लोगों को मुक्ति और ब्रह्म प्राप्ति के आनन्द से भी अधिक आनन्द प्राप्त होने लगता है । इसके निकट पहुँचने पर पापों के समूह की विकट बेडी कट जाती है और भारी ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है । और यहाँ तो स्वयम् मुक्ति ही नर्तकी के समान चारों ओर नाचती रहती है । इस प्रकार इस वन में शिव के गुण विद्यमान हैं, अर्थात् शिव के निकट पहुँचकर उनके दर्शनों से जिन वस्तुओं का लाभ होता है वे ही वस्तुएँ इस वन में पहुँचने पर भी प्राप्त हो जाती है ।

अलंकार —अनुप्रास और ललितोपमा ।

हाकलिका—सोभत दंडक की रुचि बनी । भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी ॥
सेव बडे़ नृप की जनु लसै । श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ॥११॥

भावार्थ :—सुगम ही है।

विराध-वध

स्त्राग्वनीः—राम आगे चले, मध्य सीता चली।
बंधु पाछे भये, सोम सोभैं भली॥
देखि देही सबै कोटिधा कै भनौ।
जीव-जीवेश के बीच माया मनौ॥७॥

शब्दार्थः—देही=देहधारी लोग। कोटिधाकै=करोड़ों प्रकार से। भनौ=वर्णन किया। जीव जिवेश=प्राणी तथा ब्रह्म।

भावार्थ :—स्पष्ट है।

मालती.—विपिन विराध बलिष्ठ देखियो। नृप तनया भयभीत लेखियो॥
तब रघुनाथ बाण कै हयो। निज निर्वाण-पंथ को ठयो॥८॥

शब्दार्थ :—नृप तनया=सीता। लेखियो=समझकर। हयो=मारा। निजनिर्वाण-पंथ को ठयो=अपना निर्वाण-मार्ग अर्थात् मुक्ति प्रदान की।

भावार्थ :—सरल है।

पंचवटी-वन-वर्णन

त्रिभंगीः—फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोरैं।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी वन वन प्रति नाचति डोरैं॥
सारी शुक पंडित, गुण गण-मंडित भावनमय अरथ बखानै।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरति मधु सब जानैं॥६॥

शब्दार्थः—पूरे=परिपूर्ण। रूरे=सुन्दर। कुल=समूह। सारी=मैना। मंडित=सुशोभित। भावनमय=प्रेम भाव से युक्त। सहायक=लक्ष्मण जी। मधु=बसन्त।

भावार्थ :—स्पष्ट एवं सुगम है।

सवैयाः—सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ
निघटी रुचि मीच घटी हू घटी, जग

मघ-मोघ की बेरि कटी बिकटी, निकटी प्रगटी गुरुज्ञान गटी ।
चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वन पचवटी ॥१०॥*

शब्दार्थ —दुपटि=दुपट्टा । घटी=घडी । निघटी=निश्चय ही घट जाती है । रुचिमीचु=मृत्यु की इच्छा । घटी हू घटी=प्रति घडी । तटी=तटस्थता, समाधि अवस्था । अघ=पाप । ओघ=समूह । बेरि=बेडी, जजीर । निकटी=समीप पहुँचने पर । गुरुज्ञान गटि=भारी ज्ञान की गठरी । नटी=नर्तकी । धूरजटी=महादेव ।

भावार्थ—(लक्ष्मण कहते है कि) इस पचवटी नामक वन में शिव के से गुण हैं । (जिस प्रकार शिव के दर्शनो से दुख नही रहता, उसी प्रकार) इस वन की शोभा देखते ही दुख की चादर फट जाती है और इस वन में पहुँच कर कोई भी मनुष्य कपटी नही रहने पाता अर्थात् यहाँ की निश्छल प्राकृतिक शोभा के बीच पहुँचकर मनुष्य के हृदय का सम्पूर्ण कपट का भाव स्वत समाप्त हो जाता है और (जिस प्रकार शिव के निकट पहुँचने पर मनुष्य मुक्ति की कामना भी छोड देता है तथा ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिए समाधिस्थ होने की आवश्यकता भी उसे नही रहती, उसी प्रकार) इस वन में पहुँचने पर संसार के प्राणियो की मरने की रुचि भी प्रति घड़ी घटती है और यति आदि लोगो की समाधि-अवस्था भी छूट जाती है, अर्थात् इस वन में पहुँचने पर लोगो को मुक्ति और ब्रह्म प्राप्ति के आनन्द से भी अधिक आनन्द प्राप्त होने लगता है । इसके निकट पहुँचने पर पापो के समूह की विकट बेड़ी कट जाती है और भारी ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है । और यहाँ तो स्वयम् मुक्ति ही नर्तकी के समान चारो ओर नाचती रहती है । इस प्रकार इस वन में शिव के गुण विद्यमान हैं, अर्थात् शिव के निकट पहुँचकर उनके दर्शनो से जिन वस्तुओ का लाभ होता है वे ही वस्तुएँ इस वन में पहुँचने पर भी प्राप्त हो जाती हैं ।

वेर भयानक सी अति लगै। अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥
नैनन को बहुरूपन ग्रसै। श्रीहरि की जनु मूरति लसै॥१२॥

शब्दार्थ—दंडक [illegible] वन विशेष ([illegible]) छवि=शोभा। वेर=वेला, बारी। भयानक=(१) डरावना, (२) भयंकर। भूमिभार अधिकता के नाश। वेर भयानक=भयानक वेर (प्रलय काल)। अर्क=(१) सूर्य (२) मदार वृक्ष। श्रीहरि=विष्णु।

भावार्थ—भाँति भाँति की फली फूली लताओं से युक्त दण्डक वन की शोभा मनहरण कर शोभित होती है। यह शोभा एक बड़े राजा की सेना से सुशोभित होती है, क्योंकि जिस प्रकार बड़े राजा की सेना में शौर्य (वैभव) अधिकता से होता है, उसी प्रकार उस वन में भी शौर्य (विस्तार) की अधिकता है। उस वन की शोभा प्रलय काल की सी भयानक वेला सी जान पड़ती है, क्योंकि जिस प्रकार प्रलय काल के समय अर्क समूह (अनेक सूर्य) प्रचण्ड तेज से जगमगाते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी अर्क समूह (मदार वृक्षों का समूह) जगमगा रहा है। इस वन की शोभा भगवान विष्णु की मूर्ति के समान सुशोभित होती है, क्योंकि जिस प्रकार विष्णु की मूर्ति अपने निःसीम सौन्दर्य से दर्शकों के नेत्रों को आकृष्ट कर लेती है, उसी प्रकार यह वन भी अपने नाना प्रकार के सौन्दर्य से दर्शकों के नेत्रों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

अलंकार:—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

गोदावरी

मनहरन—अति निकट गोदावरी पाप-संहारिणी।
चल तरङ्ग तुंगावली चारु संचारिणी।
अलि कमल सौगन्ध लीला मनोहारिणी।
बहु नयन देवेश शोभा मनोधारिणी॥१३॥

शब्दार्थ—चल=चंचल। तुंग=ऊँची। सौगन्ध=सुगन्धि। देवेश=इन्द्र।

भावार्थः-(राम वचन) हमारी कुटी के अत्यन्त निकट पापों का नाश करने वाली गोदावरी नदी है, जो चंचल और ऊँची तरंगों की ध्वनि सहित सुन्दरता पूर्वक प्रवाहित होती रहती है और जिसमें भ्रमर और सुगन्धित कमलों की मनोहर लीला चलती रहती है। भ्रमर युक्त अनेक कमलों सहित यह गोदावरी ऐसी प्रतीत होती है मानो अनेक नेत्रधारी इन्द्र ही सुशोभित हो रहे हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

अमृतगतिः-निपट पतिव्रत धरणी। जग जन के दुख हरणी॥
निगम सदा गति सुनिए। अगति महापति गुनिए॥ १८॥

शब्दार्थः-अगति=स्थिर रखति है। महापति=समुद्र।

भावार्थ-यह गोदावरी यद्यपि पूर्ण पतिव्रता है (क्योंकि अपने पति समुद्र में ही अनुरक्त रहती है) तो भी संसार के प्राणियों का दुख हरने वाली है। (पतिव्रता अपने पति को छोड़कर अन्य की सुख साधना नहीं करती। अतः विरोध है।) पापियों को सदा मुक्ति प्रदान करती है किन्तु अपने पति समुद्र को सदैव स्थिर रखती है (समुद्र मर्यादित रहता है।)

अलंकारः—विरोधाभास।

दोहा-विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हर लेति॥ १९॥

शब्दार्थः-विषमय=जलपूर्ण। अमृत=देवता। जीवनहार=पानी का हरण करने वाले। अशेष=सम्पूर्ण, सब।

भावार्थ-यह जलपूर्ण गोदावरी देवताओं का सा फल (मुक्ति) प्रदान करती है। केशव कहते हैं कि यह अपने जीवन का हरण करने वाले (जल पीने वाले) का सब दुख हर लेती है।

अलंकारः—श्लेष से पुष्ट विरोधाभास।

शूर्पणखा–राम–संवाद

मरहट्टाः—इक दिन रघुनायक सीय सहायक रतिनायक अनुहारी।
शुभ गोदावरि तट बिमल पंचवट बैठे हुते मुरारी॥
छवि देखत ही मन मदन मथ्यो तनु शूर्पणखा तेहि काल।
अति सुन्दर तनु करि कछु धीरज धरि बोली वचन रसाल॥१६॥

शब्दार्थः—सहायक=सहित। रतिनायक—कामदेव। अनुहारी=समान। शुभ=सुन्दर। हुते=थे। रसाल=मधुर।

भावार्थः—स्पष्ट एवं सरल है।

शूर्पणखाः-किन्नर हौ नर रूप विचच्छन, यच्छ कि स्वच्छ सरीरनि सोहौ।
चित्त-चकोर के चंद किधौं, मृग-लोचन चारु विमाननि रोहौ॥
अंग धरे कि अनंग हौ, केशव अंग अनेकन के मन मोहौ।
वीर जटानि धरे–जनुवान, लिये बनिता वन में तुम को हौ॥१७॥

शब्दार्थ—विचच्छन=प्रवीण। यच्छ=यक्ष। स्वच्छ=उज्ज्वल। मृग-लोचन चारु विमाननि रोहौ=दर्शकों के मृग के समान सुन्दर नेत्र रूपी विमानों पर सवार हो। रोहौ=आरूढ़ हो। अनंग=काम। अंगी=शरीरधारी।

भावार्थ—स्पष्ट है।

अलंकारः—सन्देह।

रामः–हम हैं दशरत्थ महीपति के सुत। शुभ राम सुलक्षमण नामन संयुत॥
यह शासन दै पठये नृप कानन। मुनि पालहु मारहु राक्षस के गन॥१८॥

शब्दार्थः—नामन संयुत=नामधारी। शासन=आज्ञा।

भावार्थः—अति सरल है।

शूर्पणखाः—नृप रावण की भगिनी गनि मोकहँ।
जिनकी ठकुराइति तीनहु लोकहँ॥
सुनिजै दुख मोचन पंकज लोचन।
अब मोहिं करो पतिनी मन रोचन॥ १९॥

शब्दार्थ—जानि=जानो। मोकहँ—मुझे। ठकुराइति=स्वामित्व, राज्य। मोचन=नष्ट करने वाले। मन रोचन=मन को रुचने वाले।

भावार्थ—सुगम है।

तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहि जानि सवाम॥
तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौवन लेखि॥ २०॥

शब्दार्थः—सवाम=स्त्री सहित, विवाहित। लेखि=जानो।

भावार्थः—सरल है।

शूर्पणखा—राम सहोदर मोतन देखो। रावण की भगिनी जिय लेखो।
राजकुमार रमो सँग मेरे। होहि सबै सुख सपति तेरे॥ २१॥

भावार्थ—सुगम है।

लक्ष्मण—वे प्रभु हौं जन जानि सदाई। दासि भये महँ कौन बड़ाई॥
जो भजिए प्रभु तो प्रभुताई। दासि भये उपहास सदाई॥ २२॥

शब्दार्थ—वे=राम। हौ=मै। जन=सेवक। भये महँ=होने में। प्रभुताई=बड़प्पन। उपहास=हँसी।

भावार्थ—सरल है।

मल्लिका—हास के विलास जानि। दीह मान खंड मानि॥
भक्षिबे को चित्त चाहि। सामुहे भई सियाहि॥ २३॥

शब्दार्थ—हास के विलास=हँसी का खेल, मजाक। दीहमान=भारी सम्मान। खंड=खंडित। सामुहे भई=सम्मुख आई। सियाहि=देखकर।

भावार्थ—सरल है।

तोमरः—तब रामचन्द्र प्रवीण। हँसि बंधु त्यों दृग दीन॥
गुनि दुष्टता सहलीन। श्रुति नासिका बिनु कीन॥ २४॥

शब्दार्थ—त्यों=ओर। दृगदीन=आँखों से कुछ संकेत किया। गुनि=समझकर। दुष्टता सहलीन=दुष्टता में संलग्न। श्रुति=कान।

भावार्थ—स्पष्ट है।

खरदूषण-वध

तोटक.–गइ शूर्पणखा खरदूषण पै। सजि ल्यायौ तिन्हैं जगभूषण पै॥
शर एक अनेक ते दूरि किये। रवि के कर ज्यौं तम पुंज पिये ॥२५॥

शब्दार्थ:–पै=पास। जगभूषण=श्रीराम। ते=रामने। कर= किरण।

भावार्थ.—स्पष्ट है।

मनोरमा छंद:—वृष के खरदूषण ज्यौं खरदूषण।
तव दूरि किये रवि के कुल-भूषण॥
गद शत्रु त्रिदोष ज्यौं दूरि करैं वर।
त्रिशिरा शिर त्यौं रघुनंदन के शर ॥२६॥

शब्दार्थ:—वृषके=वृष राशि के। खरदूषण=सूर्य (तृणों को नष्ट करने वाला)। खरदूषण=खर और दूषण नाम के असुर। रवि के कुल भूषण=सूर्य कुल के मंडन अर्थात् श्रीराम। गदशत्रु=वैद्य। वर=श्रेष्ठ। त्रिदोष=वात, पित्त और कफ के विकार। त्रिशिरा=एक राक्षस (रावण का भाई)।

भावार्थ.–जिस प्रकार कि वृष राशि का सूर्य अपनी प्रखर किरणों से तृण समूह को जला डालता है, उसी प्रकार सूर्य कुल के मंडन श्रीराम ने खर और दूषण को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया और जिस प्रकार श्रेष्ठ वैद्य त्रिदोषों को (अपनी योग्यता से) दूर कर देता हैं, उसी प्रकार राम के बाणों ने त्रिशिरा के सिरों को काट दिया।

अलंकार:—यमक तथा देहरी दीपक से पुष्ट उपमा।

मनोरमा छंद–भजि शूर्पणखा गई रावण पै तब।
त्रिशिरा खरदूषण नाश कहे सब॥
तब शूर्पणखा मुख बात सबै सुनि।
उठि रावण गो सु मरीच जहाँ मुनि ॥२७॥

शब्दार्थ :—भजि=भागकर। गो=गया। मारीच जहाँ मुनि=मुनि वेश में जहाँ मारीच था।

भावार्थ—सरल है।

अंगद-रावण-संवाद

रावण बात कही भिगरी स्यो। शूर्पणखाहि विरूप करी ज्यों॥
एकहि राम अनेक सँहारे। दूषण स्यों त्रिशिरा खर मारे॥२८॥
तू अब होहि सहायक मेरो। हौं बहुतै गुण मानिहौं तेरो॥
जो हरि सीतहि ल्यावन पैहै। वै भ्रमि शोकन ही मरि जैहै॥२९॥

शब्दार्थ :—विरूप=नाक कान रहित, बद सूरत। स्यो=सहित। गुण मानिहौं=कृतज्ञ होऊँगा। वै=राम। भ्रमि=भटक कर।

भावार्थ:—सरल है।

मारीच—रामहि मानुष कै जनि जानो। पूरण चौदह लोक बखानो॥
जाहु जहाँ तिय लै मु न देखौं। हौं हरिको जलहूँ थल लेखौं॥३०॥

रावण—तू अब मोहि सिखावन है शठ।
मैं बश लोक कियो हठ ही हठ॥
बेगि चलै अब देहि न उत्तर।
देव सबै जन एक नहीं हर॥३१॥

शब्दार्थ:—मानुष कै=मनुष्य करके। जनि=मत। मु=मो। जाहु जहाँ तिय लै मु न देखौं=मुझे … नहीं दिखाई देता, जहाँ तुम सीता को ले जाकर छिपा … चौदह भुवनों में व्याप्त … उत्तर। देव सबै

… विधि … बामु।
… बामु॥३२॥

शब्दार्थ—जानि=विचार कर। दुहूँ विधि=दोनों प्रकार से। साधु=है। कर=हाथ से। हरिपुर=बैकुंठ।

भावार्थ—सुगम है।

मारीच आगमन और उसका वध

चामर.—आइयो कुरंग एक चारु हेम हीर को।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर को॥
राज पुत्रिका समीप साधु बंधु राखिकै।
हाथ चाप बाण लै गये गिरीश नाखिकै॥३३॥

शब्दार्थ—कुरंग=हरिण। हेम=सोना। हीर=हीरा। साधु=साधु स्वभाव वाले। गिरीश=विशाल पर्वत। नाखिकै=लाँघकर।

भावार्थ—सरल है।

दोहा—रघुनायक जब ही हन्यो, सायक सठ मारीच।
'हा लक्ष्मण' यह कहि गिरेउ, श्रीपति के स्वर नीच॥३४॥

शब्दार्थ—हन्यो=मारा। सायक=बाण। श्रीपति के स्वर=राम के स्वर में।

भावार्थ—सरल है।

निशिपालिका—रामतनया तबहि बोल सुनि यों कह्यो।
जाहु चलि देवर न जात हम पै रह्यो॥
हेम मृग होहि नहिं रैनिचर जानिए।
दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनिए॥३५॥

शब्दार्थ—राजतनया=सीता। बोल=राम के स्वर में आए हुए बोल। रैनिचर=राक्षस। मुख आनियो=कहा, उच्चारण किया।

भावार्थ—स्पष्ट है।

सीता–हरण

छिद्र ताकि छुद्रराज लंकनाथ धाइयो।
भिच्छु जानि जानकी सो भीख को बोलाइयो॥

सोच पोच मोचिकै सकोच भीम भेष को।
अन्तरिच्छ ही हरी ज्यो राहु चन्द्ररेख को ॥३६॥

शब्दार्थ:-छिद्र पाइ = मौका पाकर। सोच पोच मोचिकै—उस पोच ने (रावण ने) सब विचार छोड़कर। सकोच भीम भेष को = अपने छोटे रूप को भयंकर बनाकर अर्थात् अपने वास्तविक रूप में आकर। अन्तरिच्छ = आकाश।

भावार्थ:—(सन्यासी भेषधारी) क्षुद्र बुद्धि रावण मौका देखकर, अर्थात् सीता को अकेली देखकर, सीता की पर्णकुटी के निकट आया। भिक्षु जानकर जानकी ने भीख देने के लिए उसे निकट बुलाया। ऐसा अवसर पाकर वह पोच रावण (उचित अनुचित के) सारे विचारो को छोड़ अपना असली विकराल रूप धारणकर सीता को आकाश मार्ग मे लेकर इस प्रकार उड़ा मानो राहुने द्वितीया के चन्द्रमा को पकड़ा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सीता–विलाप

सीता—हा राम ! हा रमन ! हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि वीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु बेगि मोहि।
मार्तंडवंश-यश की सब लाज तोहि ॥३७॥

भावार्थ—सरल है।

पक्षी जटायु यह बात सुनत धाइ।
रोक्यो तुरत बल रावण दुष्ट जाइ ॥
कीन्हो प्रचंड रथ छत्र ध्वजा विहीन।
छोड्यो विपक्ष तब भो जब पक्ष हीन ॥३८॥

शब्दार्थ-सुनत = सुनकर। विपक्ष = शत्रु को। भो = होगया

भावार्थ:—स्पष्ट है।

मैं विन छत्र ध्वजा रथ कीन्हो।
ह्वै गयो हो बल-पक्ष-विहीनो ॥ ४१ ॥

राम—साधु जटायु सदा बडभागी।
तो मन मो वपु सो अनुरागी।।
छूट्यो शरीर सुनी यह बानी।
रामहि में तब ज्योति समानी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—अपनो मन रोवयो=अपने दुखी मन को समभाकर। बल पक्ष विहीनो=शक्ति और पखो से रहित। मो वपुसो=मेरे रूप मे। ज्योति=जीव ज्योति।

भावार्थः—स्पष्ट है।

राम–शबरी–मिलन

यहि भाँति विलोकि सकल ठौर। गये शबरी पै दोउ देव मौर॥
लियो पादोदक तेहि पद पखारि। पुनि अर्घ्यादिक दीन्हे सुधारि॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—दोउ=दोनो (राम-लक्ष्मण)। देव मौर=देव शिरोमणि। पादोदक=चरणामृत। तेह=उसने (शबरीने)। अर्घ्यादिक=जल, फलादि।

भावार्थ—सरल है।

हर देत मन्त्र जिनको विशाल। शुभकाशी में पुनि मरन काल॥
ते आये मेरे धाम आज। सब सफल करन जप तप समाज॥४४॥

भावार्थ—अपनी पवित्र नगरी काशी में, शिव, जिन राम के नाम का महामन्त्र मरणकाल में सब जीवो को सुनाते है, वे ही राम मेरे सम्पूर्ण जप तपो को सफल करने के लिए आज मेरे घर आए है अतः मैं अत्यन्त बडभागिनी हूँ, ऐसा शबरी अपने मन में सोचती है।

फल भोजन को तेहि धरे आनि। भखे यज्ञ पुरुष अति प्रीति मान॥
तिन रामचंद्र लक्ष्मण स्वरूप। तब धरे चित्त जग जोति-रूप ॥४५॥

भावार्थ — शबरी ने राम के सम्मुख [illegible] अर्पित [illegible] (कन्द मूल) राम ने [illegible] प्रेम से [illegible] किया। तब शबरी ने राम लक्ष्मण को प्रणाम करके [illegible] [illegible] योगाग्नि से [illegible] हो गई।

दोहा — शबरी [illegible] हरि लोक।
[illegible] विलोकत हरि भये, [illegible] ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः — [illegible] [illegible] । हरिलोक — बैकुण्ठ।

भावार्थ — स्पष्ट है।

पंपासर—वर्णन

तोटक छंद — अति सुन्दर शीतल सोभ बसै।
जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै॥
बहु पंकज पंछि बिराजत हैं।
रघुनाथ विलोकत लाजत हैं॥ ४७॥

सिगरी ऋतु सोभित शुभ्र जहीं।
सह ग्रीषम पै न प्रवेश सही॥
नव नीरज नीर तहाँ सरसै।
सिय के शुभ लोचन से दरसै॥ ४८॥

शब्दार्थ—जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै=अनेक रूपों में जहाँ लोभ सुशोभित होता है, अर्थात् जहाँ की विभिन्न प्रकार की रमणीक शोभा को देखकर बड़े बड़े त्यागियों के मन में भी यहीं रहने का लोभ उत्पन्न होने लगता है। शुभ्र=उज्वल रूप में। सह ग्रीषम पै न प्रवेश सही=ग्रीष्म से यहाँ प्रवेश करते नहीं बनता।

भावार्थ—स्पष्ट एवं सरल है।

किष्किंधा-कांड

दोहा:—ऋष्यमूक पर्वत गये, केशव श्री रघुनाथ।
देखे बानर पंच विभु, मानो दक्षिण हाथ॥ १॥

शब्दार्थ:—बानर पंच=पाँच बानर—सुग्रीव, हनुमान, नल, नील और सुषेन। विभु=तेजस्वी। दक्षिण हाथ=दक्षिण दिशा के रक्षक, अथवा राम ने उन्हें दाहिने हाथ के समान समझा।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

कुसुम विचित्रा:—तब कपि राजा रघुपति देखे।
मन नर-नारायण सम लेखे॥
द्विज वपु धरि तहँ हनुमत आये।
बहु विधि आशिष दै मन भाये॥ २॥

भावार्थ:—जब कपिराज सुग्रीव ने राम को देखा (लक्ष्मण के साथ) तो अपने मन में दोनों को नर एवं नारायण के समान समझा। ब्राह्मण भेष धारण कर हनुमान राम के निकट आए और उन्हें नाना प्रकार से मन भाए आशीर्वाद दिए।

राम-हनुमान्-संवाद

हनुमान—सब विधि रूरे बन महँ को हौ?
तन मन सूरे मनमथ मोहौ।
शिरसि जटा बकला वपुधारी।
हरिहर मानहुँ विपिनविहारी॥ ३॥
परम वियोगी सम रस भीने।
तन मन एकै युग तन कीने॥

थावर जंगम जीव जु कोऊ।
सम्मुख होत कृतारथ सोऊ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—आरत=दुखी। आरति=कष्ट। पारो=प्रतिपालन करो। थावर=स्थावर। जंगम=चर।

भावार्थ—सरल है। (छन्द—दोधक)

राम-सुग्रीव मित्रता तथा सप्तताल-भेदन

तब बानर हनुमान सिधार्यो। सूरज को सुत पायनि पार्यो ॥
राम कह्यो उठि बानर राई। राजसिरी सख स्यों तिय पाई ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—सूरज को सुत=सुग्रीव। बानर राई=बानरों के राजा। सख=हे सखा। स्यों=सहित।

भावार्थः—स्पष्ट है (छन्द—दोधक)।

सूरपुत्र तब जीवन जान्यो। बालि जोर बहु भाँति बखान्यो ॥
नारि छीनि जेहि भाँति लईजू। सो अशेष विनती विनई जू ॥ १० ॥
एक बार शर एक हनो जो। सात ताल बलवन्त गनो तो ॥
रामचन्द्र हँसि बाण चलायो। ताल बेधि फिरि कै कर आयो ॥ ११ ॥

शब्दार्थः— सूरपुत्र=सुग्रीव। जीवन जान्यो=ऐसा अनुभव किया मानो जीवन मिल गया हो। जोर=शक्ति। अशेष=सब। विनती विनई=निवेदन किया। ताल=ताड़ का वृक्ष।

भावार्थः—सरल है (छन्द—स्वागत)

सुग्रीव—यह अद्भुत कर्म न और पै होई।
सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई ॥
निकरी, मन तें सिगरी दुचिताई।
तुम सों प्रभु पाय सदा सुखदाई ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—सिगरी=सम्पूर्ण। दुचिताई=सन्देह, दुविधा।

भावार्थः—सरल है (छन्द—तारक)।

सोरठाः—जिनके नाम विलास, अखिल लोक बेधन पतित ।
तिनको केशवदास, सात ताल बेधन कहा ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—नाम विलास=नाम के जाप से ।

भावार्थः—सरस है ।

तारक छंदः—अति संगति बानर की लघुताई ।
अपराध बिना वध कौन बड़ाई ॥
हति वालिहि देऊँ तुम्हे नृप शिक्षा ।
अब है कछु मो मन ऐसिय इच्छा ॥१४॥

भावार्थः—यद्यपि वानर जैसे तुच्छ प्राणियों की संगति करना मेरे लिए लघुता की बात है तथा बालि को भी बिना उसके अपराध के मारने में कोई गौरव की बात नही है, तो भी बालि को मारकर हे वानर राज मैं तुम्हें राजनीति की शिक्षा दूँगा (राजनीति में साध्य ही देखा जाता है, साधन नही) मेरे मन में इस समय कुछ ऐसी ही इच्छा है ।

वालि—वध

रवि-पुत्र वालि सों होत युद्ध । रघुनाथ भये मन माँह क्रुद्ध ।
शर एक हन्यौ उर मित्र काम । तव भूमि गिर्‌यौ कहि 'राम राम' ॥१५॥
कछु चेत भये तेहि बल-निधान । रघुनाथ विलोके हाथ बान ।
शुभ चीर जटा शिर श्याम गात । वन माल हिये उर विप्रलात ॥१६॥

शब्दार्थः—रविपुत्र=सुग्रीव । हन्यो=मारा । उर मित्र काम=हृदय में मित्र की हित कामना लेकर । ते=वह (बालि) । विप्रलात=भृगुके चरण का चिन्ह ।

भावार्थ.—स्पष्ट है (छन्दः—पद्धटिका)

वालिः—तुम आदि मध्य अवसान एक ।
जग मोहत हौ वपु धरि अनेक ॥

तुम सदा शुद्ध सब को समान।
केहि हेतु हत्यौ करुना निधान ? ॥१७॥

शब्दार्थ—आदि=जगत के उत्पादक। मध्य=जगत के पोषक। अवसान=जगत के संहारक। वपु=रूप। समान=समदर्शी। हत्यौ=मारा।

भावार्थ—सरल ही है (छन्द—पद्धटिका)

रामः—सुनि वासव-सुत बुधि-बल-निधान।
मैं शरणागत हित हते प्रान॥
यह साँटो लै कृष्णावतार।
तब ह्वै हो तुम संसार पार॥ १८॥

शब्दार्थ—वासवसुत=बालि। साँटो=बदला। संसार पार=मुक्त।

विशेष—कृष्णावतार के समय बालि ने ही जरा नामक व्याध का अवतार लेकर, प्रभास के विप्लव के उपरान्त विष्णु के अवतार कृष्ण को बाण से मारा था और इस प्रकार पुराना बदला चुकाया था।

भावार्थ—सरल है (छन्द—पद्धटिका)।

रघुवीर रंक ते राज कीन। युवराज बिरद अंगदहि दीन।
तब किष्किंधा तारा समेत। सुग्रीव गये अपने निकेत॥ १९॥

शब्दार्थ—राज=राजा। युवराजबिरद=युवराज का पद। निकेत=घर।

भावार्थ—सरल है (छन्द—पद्धटिका)।

दोहा—बिदा सुसहित सुग्रीव हरि, बलि बलि रणधीर।
गये प्रवर्षण शृंग को लक्ष्मण सौं रघुवीर॥ २०॥

शब्दार्थ—हरि=वानर। प्रवर्षण=पर्वत विशेष। शृंग=शिखर। सौं=सहित।

भावार्थ—सुगम है।

सोरठाः—जिनके नाम विलास, अखिल लोक वेधन पतित।
तिनको केशवदास, गात ताल वेधन कहा॥१३॥

शब्दार्थ—नाम विलास = नाम के जाप से।

भावार्थ:—सरल है।

तारक छंदः—अति संगति वानर की लघुताई।
अपराध बिना वध कौन बड़ाई॥
हति वालिहि देऊँ तुम्हे नृप शिक्षा।
अब है कछु मो मन ऐसिय इच्छा॥१४॥

भावार्थः—यद्यपि वानर जैसे तुच्छ प्राणियों की संगति कर
लिए लघुता की बात है तथा वालि को भी बिना उसके अपराध के
में कोई गौरव की बात नहीं है, तो भी वालि को मारकर हे वानर रा
में तुम्हें राजनीति की शिक्षा दूँगा (राजनीति में साध्य ही देखा
है, साधन नहीं) मेरे मन में इस समय कुछ ऐसी ही इच्छा है।

वालि–वध

रवि-पुत्र वालि सों होत युद्ध। रघुनाथ भये मन माँह क्रुद्ध।
शर एक हन्यौ उर मित्र काम। तब भूमि गिर्‌यौ कहि 'राम राम'॥
कछु चेत भये तेहि बल-निधान। रघुनाथ विलोके हाथ बान।
शुभ चीर जटा शिर श्याम गात। बन माल हिये उर

शब्दार्थ:—रविपुत्र = सुग्रीव। हन्यौ —
हृदय में मित्र की हित कामना लेकर। ते =
भृगुके चरण का चिन्ह।

भावार्थ.—स्पष्ट है। (छन्द:

वालि:—शुभ आदि

दूरि करि सुख मुख सुखमा ससी की,
नैन अमल कमल दल दलित निकाई है।।
केसौदास प्रबल करेनुका गमनहर,
मुकुत सु हंसक सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरषि हिय आई है ।।२३।।

शब्दार्थ –(१ वर्षा पक्ष में) भौ=भय । सुरचाप =इन्द्र धनुष। प्रमुदित पयोधर=उमड़ते हुए बादल। भू =पृथ्वी। ख=आकाश। नजरयत= दिखाई देती है। तड़ित =बिजली। तरलाई =चंचलता। सुख=सहज ही, आसानी से। सुख सुखमा ससी की =चन्द्रमा के मुख की सुन्दरता अर्थात् चाँदनी। नै=नदी। न अमल- स्वच्छ नहीं है। कमल दल =कमल की पखड़ियाँ। दलित=नष्ट। निकाई=काई रहित। क =जल। प्रबल क= जल की तीव्र धारा। रेनुकाहर =बालू को बहाने वाली। गमन हर = आवागमन को बन्द करने वाली। मुकुत=रहित। सुहंसक–सबद=सुन्दर हंसों का शब्द। अम्बर=आकाश। बलित =बादलों से युक्त। नीलकंठ=मयूर।

भावार्थ —(वर्षा पक्ष में) अपने हृदय में हर्षित होकर ऐसी वर्षा ऋतु आई है जिसमें अनेक भय हैं (घरों के धराशायी होने के तथा सर्पादि के), सुन्दर इन्द्र धनुष है, उमड़ती हुई घटाएँ हैं तथा जिसमें बिजली की चंचल ज्योति पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है। इस वर्षा ऋतु ने चन्द्रमा के मुख की सुन्दरता को सहज ही दूर कर दिया है। इसमें नदियाँ स्वच्छ नहीं हैं, अर्थात् उनमें गदला पानी भरा है, कमलों की पखड़ियाँ नष्ट हो गई हैं तथा सरोवर काई रहित हैं। केशव दास कहते हैं कि वर्षा के जल की प्रबल धारा ने बालू को बहा दिया है और आवागमन के मार्गों को नष्ट कर दिया है। सारा प्रदेश हंसों के सुख दायक स्वर से मुक्त है। सारा आकाश बादलों से भरा हुआ है जिन्हें देखकर मयूरों की मति विमुग्ध हो रही है। ऐसी रूपवाली यह वर्षा है अथवा कालिका है।

वर्षा—वर्णन

देखि राम वर्षा ऋतु आयी। रोम रोम बहुधा दुखदायी।
आसपास तम की छबि छायी। राति दिवस कछु जानि न जायी ॥२१॥

शब्दार्थ—बहुधा=बहुत। आसपास=चारों ओर। तम की छबि छाई=घोर अंधकार छाया है।

भावार्थ—स्पष्ट है (छन्दः-स्वागता)

भट चातक दादुर मोर न बोलें।
चपला चमकै न फिरै खँग खोलें ॥
द्युतिवंतन कों विपदा बहु कीन्ही।
धरणी कँह चन्द्रवधू धरि दीन्ही ॥२२॥

शब्दार्थः—खँग=तलवार। द्युतिवंतन=सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र आदि चमकपूर्ण ग्रह। कहँ=को। चन्द्रवधू=वीर बहूटी (एक लाल रंग का मुलायम कीड़ा)। धरि=पकड कर।

भावार्थः—ये पपीहे, मेढक तथा मोर नहीं बोल रहे हैं और यह बिजली नही चमक रही हैं, वरन् (इन्द्र के योद्धा ही) अपनी तलवार खोलकर घूम रहे हैं। (इस प्रकार इन्द्र ने सूर्य के बैर के कारण) चन्द्र, शुक्रादि सारे द्युतिमान पदार्थों पर भारी विपत्ति डाल दी है। यहां तक कि चमकदार वीर बहूटियो को भी पकड़कर पृथ्वी के सुपुर्द कर दिया है (ताकि पृथ्वी, जिसके अंगों को सूर्य बिना किसी अपराध के दग्ध करता है, इन्हें इच्छानुसार दण्ड दे सके)।

अलंकारः—अपह्नुति (सत्य के स्थान पर मिथ्या की स्थापना द्वारा) तथा प्रत्यनीक (सूर्य के बैर के कारण सारे चमकदार पदार्थों को दण्डित करने के कारण)।

वर्षा—कालिका—रूपक

घनाक्षरी;—भौंहे सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।

दूरि करि सुख मुख सुखमा ससी की,
नैन अमल कमल दल दलित निकाई है।।
केसौदास प्रबल करेनुका गमनहर,
मुकुत सु हंसक सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरखा हरषि हिय आई है ।।२३।।●

शब्दार्थ.—(१ वर्षा पक्ष मे) भौ=भय । सुरचाप=इन्द्र धनुष । प्रमुदित पयोधर=उमडते हुए बादल । भू=पृथ्वी । ख=आकाश । नजराय= दिखाई देती है । तड़ित=बिजली । तरलाई--चपलता । सुख=सहज ही, आसानी से । मुख सुखमा ससी की=चन्द्रमा के मुख की सुन्दरता अर्थात् चाँदनी । नैं=नदी । न अमल=स्वच्छ नहीं है । कमल दल=कमल की पखड़ियाँ । दलित=नष्ट । निकाई=काई रहित । क=जल । प्रबल क= जल की तीव्र धारा । रेनुकाहर=बालू को बहाने वाली । गमन हर= आवागमन को बन्द करने वाली । मुकुल=रहित । सुहंसक–सबद=सुन्दर हंसों का शब्द । अम्बर=आकाश । बलित=बादलों से युक्त । नीलकंठ=मयूर ।

भावार्थ—(वर्षा पक्ष में) अपने हृदय में हर्षित होकर ऐसी वर्षा ऋतु आई है जिसमें अनेक भय हैं (घरों के धराशायी होने के तथा सर्पादि के), सुन्दर इन्द्र धनुष है, उमड़ती हुई घटाएँ हैं तथा जिसमें बिजली की चचल ज्योति पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है । इस वर्षा ऋतु ने चन्द्रमा के मुख की सुन्दरता को सहज ही दूर कर दिया है । इसमें नदियाँ स्वच्छ नहीं हैं, अर्थात् उनमें गदला पानी भरा है, कमलों की पखड़ियाँ नष्ट हो गई हैं तथा सरोवर काई रहित हैं । केशव दास कहते हैं कि वर्षा के जल की प्रबल धारा ने बालू को बहा दिया है और आवागमन के मार्गों को नष्ट कर दिया है । सारा प्रदेश हंसों के सुख दायक स्वर से मुक्त है । सारा आकाश बादलों से भरा हुआ है जिन्हें देखकर मयूरों की मति विमुग्ध हो रही है । ऐसी रूपवाली यह वर्षा है अथवा कालिका है ।

शब्दार्थ:-(२ कालिका पक्ष में) भौहें=भृकुटियाँ। प्रमुदित=पुष्ट, उन्नत। पयोधर=स्तन। भूखन=आभूषण। जराय=जड़ाऊ। रलाई है =मिली हुई है। नैन अमल=उज्ज्वल नेत्र। निकाई=सुन्दरता। प्रबल= मस्त। करेनुका=हथिनी। गमन हर=चाल को हीन सिद्ध करने वाली। मुकुत=स्वच्छन्द। हंसक=बिछुए। अंबर=वस्त्र। बलित=युक्त। नीलकंठ =महादेव।

भावार्थ:-(कालिका पक्ष में) इन्द्र धनुष ही जिसकी सुन्दर भृकुटियाँ हैं, उमडे हुए बादल ही जिसके उन्नत स्तन हैं, बिजली की ज्योति ही जिसके जड़ाऊ आभूषणों में चमक के रूप में मिली हुई है तथा जिसने अपने मुख की सुन्दरता के सामने चन्द्रमा के मुख की सुन्दरता को सहज ही दूर कर दिया है (वर्षा ऋतु में चन्द्रमा मेघों से आच्छादित हो जाता है); जिसके उज्ज्वल नेत्रों के सम्मुख कमल की पखड़ियों की सुन्दरता नष्ट हो गई है (वर्षा काल मे कमलों की सुन्दरता नष्ट हो जाती है); केशवदास कहते है कि जिसकी सुन्दर गति के सम्मुख मस्त हाथियों की चाल भी छिन गई है तथा जिसके बिछुओं (झिल्ली, झिंगुर आदि) का स्वच्छन्द शब्द अत्यन्त सुखदाई है, नीलाम्बर पहन कर जो महादेव की मति को अपनी ओर आकृष्ट करती है, ऐसी वह कालिका (पार्वती) आई है अथवा वर्षा ऋतु है (वर्षा में आकाश मेघों से युक्त होने के कारण नीले वस्त्र के समान दिखाई देता है)।

अलंकार:—सभंग पद श्लेष तथा सन्देह।

दोहा-वर्णत केशव सकल कवि, विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, संतत मिथ्या दृष्टि॥२४॥

शब्दार्थ-विषम गाढ़=अत्यन्त सघन। तम-सृष्टि=अंधकार की [illegible]। सन्तत=सदैव, निरन्तर। दृष्टि=(१) निगाह (२) माला, साथ।

[illegible]:-केशव कहते हैं कि वर्षा काल में ऐसे गघन अंधकार की [illegible]ोती है कि उसके कारण निगाह सदैव उसी प्रकार मिथ्या प्रमाणित

होती है (अर्थात् अधवार के आधिक्य से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता) जिस प्रकार कुपुरुष की निरन्तर सेवा करने पर भी कोई आशा फलवती नहीं होती।

अलंकार:—उदाहरण।

शरद—वर्णन

दोहा:—बीते वर्षा काल यों आई शरद सुजाति।
गये अँध्यारी होति ज्यों, चारु चाँदनी राति॥२४॥

शब्दार्थ—सुजाति=कुलीन अर्थात् अच्छे कुल की स्त्री। चारु=सुन्दर।

भावार्थ—सुगम है। (अलंकार—उदाहरण)।

दोहा—लक्ष्मण दासी वृद्ध सी आई शरद सुजाति।
मनहुँ जगावन को हमहि बीते वर्षा राति॥२६॥

भावार्थ—(राम कहते हैं कि) हे लक्ष्मण! यह शरद ऋतु उच्च कुल की वृद्ध दासी के समान आई है, मानो वर्षा ऋतु रूपी रात्रि के समाप्त होने पर हमको जगाने आई हो (आशय यह है कि वह वर्षा काल समाप्त हो गया है जो हमारे कार्य में बाधक था। अत अब हमें सीता को खोजने व अपने कार्य के प्रति जागरूक हो जाना चाहिए)।

अलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

हनुमान का सीता की खोज के लिए प्रस्थान

दोहा—बुधि विक्रम व्यवसाय युत, साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के, मुंदरी दीन्ही हाथ॥२७॥

शब्दार्थ—विक्रम=शक्ति। व्यवसाय=व्यवसाय कार्य में निपुण दाम नीति में चतुर। युत=युक्त, सहित। साधु=शान्त स्वभाव वाले, साम नीति युक्त। बल=सेना। अनन्त=असख्य। मुंदरी=मुद्रिका, अगूठी।

भावार्थ—राम ने हनुमान को बुद्धि, पराक्रम व्यवसाय-बुद्धि और साधु स्वभाव से युक्त जान कर, अर्थात् साम, दाम, दण्ड और भेद नीतियों में

सुन्दर-कांड

दोहा—उदधि नाकपति शत्रु को उदित जानि बलवन्त।
अन्तरिच्छ ही लच्छि पद अच्छ छुयो हनुमन्त ॥१॥

शब्दार्थ—नाकपति शत्रु=मैनाक (पर्वत विशेष)। उदित जान=उठता हुआ जानकर। अन्तरिच्छ ही=आकाश ही से। लच्छि=लक्ष्य (निशान)। अच्छ पद=दृष्टि रूपी चरण से।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

तारक छंद:— कछु राति गये करि दश दशा सी।
पुर माँझ चले वनराजि विलासी ॥
जब ही हनुमन चले तजि शंका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ॥२॥

शब्दार्थ—दश दशा सी=डाँस (मच्छर) का छोटा रूप धर कर। पुर माँझ=नगर (लंका) के मध्य। वनराजि विलासी=वनों में विचरण करने वाले (हनुमान जी)। तिय ह्वै=स्त्री का रूप धारण कर।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

हनुमान-लंका-संवाद

लंका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हौ ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ ?
पठये केहि कारण, कौन चले हौ ?
सुर हौ किधौं कोउ सुरेश भले हौ ॥३॥

शब्दार्थ:—मोहि उलंघि=मेरी अवज्ञा करके।

भावार्थ:—सरल है (अलंकार:—सन्देह)

हनुमान—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुनी अवलोकन आये ॥

लंका—हति मोहि महामति भीतर जैए।
हनुमान—तरुणीहि हते कबलौं मुख पैए ॥८॥
लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहो।
हठ कोटि करो घरही फिरि जैहो ॥
हनुमत बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तब ही बर नारी ॥

शब्दार्थ:—तिनकी तरुणी=उनकी स्त्री को (सीता को)। अव-लोकन=खोजने। हति मोहि=मुझे मार कर। मारेहि पै=मार कर ही। थापर=थप्पड। वर नारी=सुन्दर स्त्री।

भावार्थ:—सरल है।

रावण का शयनागार

चौपाई—तब हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छवि लेख्यो ॥
तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावैं।
बिच बिच आवझ बीन बजावैं ॥६॥

शब्दार्थ:—हरि=बानर (हनुमान)। मनिमय=मणि-जटित। आवझ=ताशे।

भावार्थ—सरल है।

भुजंग प्रयात छंद—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं ॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावैं ॥६॥

शब्दार्थ—किन्नरी=किन्नरों की कन्याएँ। किन्नरी=सारंगी। सुरी=देव कन्याएँ। आसुरी=असुर कन्याएँ। यक्षिणी=यक्षों की कन्याएँ। पक्षिणी=शारिका, मैना आदि। नगी-कन्या=पर्वत प्रदेश की कन्याएँ। पन्नगी=सर्पिणियाँ।

भावार्थ:—सरल है।

भुजंग प्रयात छंद—पियें एक हाला गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचैं चित्रशाला॥
वहै कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावैं सुआ लै सुकी सारिका को॥८॥

शब्दार्थ:—एक = कोई। हाला = शराब। गुहै = गूँथती है। चित्रशाला = नृत्य कक्ष। कोकिला = कोकिल के समान मधुर स्वर वाली। कोक = कोक शास्त्र। कारिका = श्लोक। सुकी = सुग्गी। सारिका = मैना।

भावार्थ—सरल है।

भुजंग प्रयात छंद—फिर्‌यो देखिकै राजशाला सभा को।
रह्यो रीझिकै वाटिका की प्रभा को॥
फिर्‌यो ओर चौहूँ चितै शुद्ध गीता।
बिलोकी भली सिंसिपा-मूल सीता॥९॥

शब्दार्थ.—फिर्‌यो = लौटा। राजशाला = राजमहल। प्रभा = सुन्दरता। ओर चौहूँ = चारों ओर। शुद्धगीता = सर्व प्रशंसित। सिंसिपा-मूल—सीसम (अशोक) के पेड़ के नीचे।

भावार्थ—सरल है।

वियोगिनी सीता का रूप

भुजंग प्रयात छंद—धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी॥
सदा रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर है राकसी दुख दानी॥१०॥

शब्दार्थ—[illegible]। मिली मैल—मैली। मृणाली—कमल नाल। पंक—कीचड़। ररै—रटती है। दीनबानी—दीन स्वर से। राकसी—राक्षसी। दुख दानी—दुख देने वाली।

भावार्थ—सुगम है (अलंकार—व्याजस्तुति)

भुजंग प्रयात छंद—महेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करें सेव बानी मघौनी मृडानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावें।
सुकेसी नचें उर्वसी मान पावें॥१४॥

शब्दार्थ—महेवी=राक्षसी। नृदेवी=रानियाँ। सेव=सेवा। बानी=सरस्वती। मघौनी=शची। मृडानी=भवानी। किन्नरी=किन्नरों की स्त्रियाँ। किन्नरी=सारंगी। सुकेसी, उर्वसी=अप्सराएँ। मान पावें=सम्मानित होंगी।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

सीता—तृण बिच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दस मुख सठ को तू? कौन की राजधानी?॥
दसरथ सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै॥१५॥

शब्दार्थ—तृन बिच दै=बीच में तिनका देकर (रावण से सीधा सम्भाषण न करने के कारण) गंभीर=निशंक भाव से। न भासै=शोभित नहीं होते। निसिचर बपुरा तू=तू तो बेचारा (तुच्छ) राक्षस ही है। स्यों मूल नासै=समूल नष्ट होगा।

भावार्थ:—सरल है। छन्द—मालिनी

मालिनी छंद:—उठि उठि सठ ह्याँ तें भागु तौलौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौलौं न लागे॥
बिकल सकुल देखौ आसु ही नास तेरो।
निपट मृतक तोको रोष मारै न मेरो॥१६॥

शब्दार्थ—जौलौं=जब तक। बचन बिसर्पी सर्प=वचन रूपी तेज चलने वाले सर्प। आसुहि=शीघ्र ही। निपट मृतक=पूर्ण रूप से मृतवत्।

कहि मानो तू भेद। न तु चित उपजत खेद॥
कहि कैसे बानर पाय। न तु नाहि देखो धाय ॥ २४ ॥
हरि वृक्ष शाखा भूमि। कपि उतरि आयो भूमि॥
संदेश चित महँ चाइ। तब कही बात बनाइ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—सियरी=शीतल। परयो सभ्रम भाउ =भारी भ्रम का भाव
...त हुआ। बालपन ते=बचपन से। सु=वह। आनियो=लाया। सुधि=पता
...। काहि=किससे। बूझन=पूछने। सत्रास=भयभीत होकर। साख=
...पर। नीठि=कठिनाई से। दीठि=दृष्टि। आइ=है। मोतन चाहि=
...और देख। पक्ष=मेरे पक्ष का। पक्ष-विरूप=शत्रु पक्ष का। नतु=
...ही। खेद=भय। संदेश चित मँह चाइ=सीता के चित में राम
सन्देश जानने की चाह है, ऐसा जानकर।

भावार्थ—स्पष्ट एवं सरल है।

सीता–हनुमान–संवाद

...छंदः—कर जोरि कह्यो, 'हौं पवन-पूत।
जिय जननि जान रघुनाथ-दूत'॥
'रघुनाथ कौन?' 'दशरथ-नंद।'
'दशरथ कौन?' 'अज-तनय चंद' ॥२६॥
'केहि कारण पठये यहि निकेत?'
'निज देन लेन संदेश हेत॥'
'गुन रूप शील शोभा सुभाव।
कछु रघुपति के लक्षण बताव ॥२७॥
'अति यदपि सुमित्रा-नंद भक्त।
अति सेवक है अति सूर सक्त॥
पर यदपि अनुज तीन्यो समान।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥२८

भावार्थ.—स्पष्ट है।

हनुमान—तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।

कंकन की पदवी दई तुम बिन यावहँ राम॥ ३२॥

भावार्थः—(हनुमान का सीता को चतुराई पूर्ण उत्तर) हे मात तुम इसे मुद्रिका नाम से सम्बोधित करके पूछती हो, किन्तु यह इस नाम को सुनकर चुप है, क्योंकि तुम से रहित होकर राम ने इसे (मुद्रिका के स्थान पर) कंकण नाम प्रदान कर दिया है, अर्थात् तुम्हारे वियोग में राम इतने दुर्बल हो गए हैं कि यह मुद्रिका अब उनके हाथ में कंकण के स्थान पर पाती है (इसीलिए यह तुम्हारी बात का उत्तर नहीं देती)।

दंडक:—दीरघ दरीन बसै केसोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बन करी ज्यों कँपत है।
बासर की सपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत है॥
केका सुनि व्याल ज्यों, बिलात जात घनश्याम
घनन की घोरनि जवासो ज्यों तपत है।
भौंर ज्यों भँवत, योगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत है॥ ३३॥

शब्दार्थः—दीरघ दरीन=बड़ी बड़ी गुफाएँ। केसरी=(१) सिंह, (२) केसर की क्यारी। करी=हाथी। बासर की सम्पति=दिन का प्रकाश। चँपत है=व्याकुल होते है। केका=मोर का स्वर। व्याल=सर्प। बिलात जात=छिप जाते है। घोरन—गर्जना। जवासा=एक पौधा विशेष जो वर्षाकाल में जल जाता है। भँवत=भ्रमण करते है। साकत=शक्ति के उपासक व्यक्ति।

शब्दार्थः—जननि = हे माता। अज तनय चंद = चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कीर्ति वाले राजा अज के पुत्र। यहि निकेत = इस स्थान पर। निज देन लेन संदेश हेत = अपना संदेशा पहुँचाने तथा आपका संदेशा लेने के लिए। सुमित्रानन्द = लक्ष्मण। अनुज = छोटे भाई। भावत = अच्छे लगते हैं। निदान = अन्ततः, सर्वाधिक।

भावार्थ—सरल है।

पद्धरिका छन्दः—ज्यौं नारायण उर श्री बसंति।
त्यौं रघुपति उर कछु द्युति लसति॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप।
सुर असुर न पूजें राम रूप'॥२६॥

शब्दार्थः—श्री = श्री वत्सका चिन्ह। लसंति = शोभित होती है। न पूजें = समानता नही कर सकते।

भावार्थः—(हनुमान राम के रूप की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि) जैसे भगवान नारायण के हृदय पर श्रीवत्स का चिह्न विद्यमान है, वैसे ही श्रीराम के हृदय पर भी द्युतिमान चिह्न शोभित है। इस पृथ्वी पर जितने भी राजा हैं, वे तथा देवता अथवा असुर, कोई भी राम की सुन्दरता की बराबरी नहीं कर सकते।

दोहाः—आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरनति है बहु भाइ॥

भावार्थः—सहज ही सुखद स्वभाव वाली सीता (हर्षाधिक्य से) आँसू बहाती हुई तथा हृदय में प्रसन्न होकर अपने पति राम की मुद्रिका को देख कर नाना प्रकार से उसका वर्णन करती है।

पद्धटिका छंद.—कहि कुसल मुद्रिके! रामगात।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात॥
यह उत्तर देति न बुद्धिवंत।
केहि कारण धौं

वियोग में उन्हे वन की शोभा दुखदायिनी प्रतीत होती है, ग्रत. उसे नही देखते); केसर की क्यारी को देखकर वे उसी प्रकार कांपने लगते है जिस प्रकार सिंह को देखकर हाथी कांपने लगता है (केसर में सीता का वर्ण साम्य पाकर); दिन के प्रकाश को वे उसी प्रकार नही देखते जिस प्रकार उल्लू पक्षी (तुम्हारे बिना उन्हे दिन का प्रकाश भी ग्रच्छा नही लगता) ग्रौर (रात्रि में) चन्द्रमा को देख कर वे चकवे की भाँति व्याकुल होने लगते हैं। मोरों के (प्रिय की स्मृति को उद्दीप्त करने वाले) स्वर को सुनकर वे सर्प की भाँति (कन्दराग्रों में) छिप जाते हैं तथा काले बादलो की गर्जना को सुनकर वे जवासे की भाँति सन्तप्त होने लगते है। (तुम्हारे वियोग में) भ्रमर की भाँति वन मे सर्वत्र भ्रमण करते रहते है तथा रात्रि में जोगियों की भाँति जागते रहते हैं ग्रौर शाक्त की भाँति सदैव तुम्हारा ही नाम रटते रहते हैं।

ग्रलंकार:—उपमा से पुष्ट उल्लेख।

वारिधर.—राजपुत्रि एक बात सुनौ पुनि, रामचन्द्र मन माँह कही गुनि।
राति दीह जमराज जनी जनु, जातनानि तन जानत कै मनु ॥३४॥

शब्दार्थ—मन माँह गुनि=मन में विचार कर। दीह=दीर्घ, बड़ी। जमराज जनी=यमराज की दासी (बहुत कष्ट देने वाली)। जातना=पीड़ा, कष्ट।

भावार्थ:—हे राजपुत्री! ग्रौर एक बात सुनिए जो श्री राम ने मन में विचार कर कही है। बड़ी रात्रि (तुम्हारे वियोग में) यमराज की दासी के समान ग्रत्यन्त कष्टदायिनी प्रतीत होती है, जिससे होने वाली यातना को हमारा [illegible] ही जानता है — जो व्यक्त नही की जा सकती।

[illegible] दसा कहा कहौं दीप दसा सी देह।
जानि वासर निसा केशव सहित सनेह ॥ ३५ ॥

ग्रपनी दशा का क्या वर्णन करूँ, मेरा शरीर तो दीपक प्रेम वश दिन रात जलता रहता है।

अलंकार:—उपमा, श्लेष एवं व्यतिरेक ।

हनुमान—रघु जननि दै परतीति जासों रामचन्द्रहि ग्रावई ।
सुभ सीस की मनि दई यह कहि,'सुयस तव जग गावई ।।
सब काल हूँ हौ प्रमर ग्ररु समर जयपद पाइहौ ।
सुत वायु के रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ' ।। ३६ ।।

शब्दार्थ.—रघु - वाई चिन्ह । परतीति विश्वास । तव = तेरा । समर = युद्ध में । जयपद विजय ।

भावार्थ:—सरल है (छन्द –हरिगीत) ।

हनुमान का राक्षस—सहार

कर जोरि पग परि तारि उपवन कोरि किंकर मारियो ।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत ग्ररु पंच मंत्रि संहारियो ।।
रन मारि ग्रच्छकुमार बहु विधि इन्द्रजित सो युद्ध कै ।
ग्रति ब्रह्मग्रस्त्र प्रमान मानि सो वस्य भो मन सुद्ध कै ।। ३७ ।।

शब्दार्थ.—तोरि = नष्ट करके । कोरि = करोड़ । किंकर = सेवक । पंचमंत्रि = पाँच मंत्रियों को । ग्रच्छकुमार = ग्रक्षयकुमार, रावण का एक पुत्र । इन्द्रजित = मेघनाद । ब्रह्मग्रस्त्र = ब्रह्मफाँस । वस्य भो = वशीभूत हो गए । मन सुद्ध कै = शुद्धमन से (शक्ति ग्रथवा भय से नहीं)

भावार्थ.—स्पष्ट है (छन्द –हरिगीत)

हनुमान—रावरा—सवाद

'रे कपि कौन तू ? ग्रच्छ को घातक' 'दूत बली रघुनंदन जू को ।'
'को रघुनंदन रे ?' 'त्रिसिरा—खरदूषन—दूषन भूषण भू को ।।'
'सागर कैसे तर्यो ?' जैसे गोपद, 'काज कहा ?' सिय चोरहि देखौं ।'
'कैसे बँधायो ?''जो सुंदरि तेरी छुई दृगसोवत, पातक लेखौं ।। ३८ ।।

शब्दार्थ —घातक = मारने वाला । त्रिसिरा-खर-दूषण-दूषण =

त्रिशिरा और खर तथा दूषण को नष्ट करने वाले। भूषण भू को=संसार के भूषण रूप। गोपद=गाय के खुर का गड्ढा। पातक लेखो=(इसी) पाप से समझो।

भावार्थः—सरल है (छन्दः-विजय)।

दण्ड—व्यवस्था

रावणः—कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिए।
काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिए॥
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौरि टाँगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे॥ ३९॥

शब्दार्थः—कोरि कोरि=करोडों। यातना=कष्ट। फोरि फोरि फारिये=इतना मारो कि अंग फूटकर उनसे रक्त प्रवाह होने लगे। पौरि=पौल, द्वार। रुण्ड=धड।

भावार्थः—स्पष्ट है। (छन्द-चामर)

विभीषण—दूत मारिए न राजराज छाँडि दीजई।
मंत्रि मित्र पूछि कै सो और दंड कीजई॥
एक रंक मारि क्यों बडो कलंक लीजई।
बुंद सोखि गो कहा महा समुद्र छीजई॥४०॥

भावार्थ—(रावण प्रति विभीषण कथन) हे राजराजेश्वर दूत को न मारिए, इसे छोड दीजिए। अपने मंत्री तथा मित्रों से परामर्श करके (मृत्यु दण्ड के अतिरिक्त) किसी अन्य दण्ड की व्यवस्था कीजिए। एक क्षुद्र को मारकर भारी कलंक अपने सिरपर क्यों लेते हैं? महा समुद्र में से जल की एक बूँद के सूखने पर क्या वह क्षीण हो सकता है? अर्थात् राम की विशाल सेना में से एक साधारण व्यक्ति के मार देने से क्या वह कम जावेगी।

अलंकारः—दृष्टान्त। (छन्द-चामर)।

शब्दार्थः—सुख पाइकै=(सीता की कुशलता से) आनन्दित होकर। पुहुप=पुष्प।

हनुमान का राम से पुन साक्षात्कार एवं मणि-प्रदान

भावार्थ:—स्पष्ट है।

संयुक्ता छंदः—रघुनाथ पै जब ही गये, उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करनी करी, सिर पाय की धरनी धरी ॥४५॥

शब्दार्थः—पै=निकट। जब ही=ज्योही। अंक लावन को भये=(राम) छाती से लगाकर भेंट करने को हुए। सिर पाँय की धरनी धरी=अपने सिर पर राम की चरण रज धरी।

दोहाः—चिंतामनि सी मनि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रंग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥४६॥

भावार्थ—हनुमान ने श्रीराम के हाथ में चिंतामणि के समान सारी कामनाओं की पूर्ति करने वाली सीताजी की चूडामणि प्रदान की। वह मणि ऐसी प्रतीत होती थी मानो अनन्त प्रेम मे रँगा हुआ सीताजी का मन ही हो।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा।

दोधकः—श्री रघुनाथ जबै मणि देखी, जी महँ भागदशा सम लेखी।
फूलि उठ्यो मन ज्यो निधि पाई, मानहु अंध सुदीठि सुहाई ॥४६॥

शब्दार्थः—जी मँह=मन में। भागदशासम=सौभाग्य के समान। लेखी=समझी। निधि=खजाना। अंध=अंधे को। सुदीठि=सुन्दर दृष्टि।

भावार्थ—सरल है।

तारक छन्दः—मणी होहि नही मनु आय प्रिया को।
उर प्रगट्यो पुन प्रेम दिया को॥

शुभ अंग अंगद कंध लक्ष्मण लक्षिये यहि भाँति जू।
जनु मेरु पर्वत शृङ्ग अद्भुत चन्द्र राजत रातजू ॥५१॥

शब्दार्थः—सोभिजै=सुशोभित हैं। तेहिकाल=उस समय (प्रयाण काल में)। उदयाद्रि=उदयाचल पर्वत। शोभन=सुन्दर। शृङ्ग=चोटी। शुभ्र=उज्ज्वल। सूर=सूर्य। शुभ=सुन्दर। लक्षिये=दिखाई पड़ते हैं।

भावार्थ—लंका की ओर प्रयाण करते समय श्रीराम हनुमान के कन्धे पर बैठे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो उदयाचल पर्वत की सुन्दर चोटी पर उज्ज्वल वर्ण वाला विशाल सूर्य हो तथा सुन्दर शरीर वाले अंगद के कंधे पर बैठे लक्ष्मण इस प्रकार दिखाई देते हैं मानो सुमेरु पर्वत की चोटी पर रात्रि के समय अद्भुत चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो।

अलंकार.—उत्प्रेक्षा।

दोहाः—बल-सागर लछिमन सहित, कपि-सागर रनधीर।
यस-सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर ॥५२॥

शब्दार्थः—कपिसागर=समुद्र के समान विशाल वानर सेना। मेले= उतरे, डेरा डाला।

भावार्थ—व्यापक यश वाले रामचन्द्र, अति बलशाली लक्ष्मण तथा [समु]द्र के समान विशाल वानर सेना के सहित आकर, समुद्र के किनारे ठहरे।

लंका-कांड

विभीषण का रावण को उपदेश

विभीषण—को है अतिकाय जो देखि सकै।
को कुंभ निकुंभ वृथा जो बकै॥
को है इन्द्रजीत जो भीर सहै।
को कुंभकरण हथ्यार गहै॥ १॥

शब्दार्थ—अतिकाय=रावण का एक सेनापति। कुंभ निकुंभ=कर्ण के दो वीर पुत्र। इन्द्रजीत=मेघनाद।

भावार्थ—सरल है। (छन्द-मोटनक)

छन्द—देखे रघुनायक धीर रहै। जैसे तरु पल्लव वायु बहै॥
जौलौं हरि सिंधु तरेई तरै। तौलौं सियलै किन पाय परै॥ २॥

भावार्थः—विभीषण कहते हैं कि तुम्हारे इन वीरों में ऐसा कौन है जो राम को रण में देखकर दृढ़ता से डटा रह सके। वे सब वीर राम के सामने ऐसे भाग खड़े होंगे जैसे वायु के प्रवाहित होते ही वृक्षों के पत्ते उड़ने लगते हैं। इससे पूर्व कि राम समुद्र को पार करके लंका आएँ, तुम सीता को साथ लेकर क्यों नहीं उनके पैरों पड़कर क्षमा माँग लेते (क्योंकि उनके हाथों बचने का और कोई उपाय नहीं है)

भुजंग छन्द— जौलौं नल नील न सिंधु तरें,
जौलौं हनुमन्त न दृष्टि परें।
जौलौं नहिं अंगद लंक दही,
तौलौं प्रभु मानहु बात कही॥ ३॥

जौलौं नहीं लछमन बान धरें,
जौलौं सुग्रीव न कोप करें।
जौलौं रघुनाथ न सीस हरो,
तौलौं प्रभु मानहु पाइ परौ॥ ४॥

शब्दार्थ:—मही=जमात। सीस हरो=सिर काटे।
भावार्थ:—सरल है।
रावण—करि लाज लाज तजि कै उठि धायो।
धिक मोहि मोहि मनुभावन पायो॥
तजि राम नाम यह बोल उचार्यो।
गिरलोकि लात पग सागर मार्यो॥ ५॥
करि हाय हाय उठि देह सभार्यो।
लिय पग लाग सब मन्त्रिन चार्यो॥
तजि अंध अधु दशकंठ उड़ान्यो।
उर रामचन्द्र जगतीपति जान्यो॥ ६॥
श्री रामचन्द्र अति आरतवंत जानि।
लीन्हो बोलाय शरणागत सुखदानि॥
लंकेश आउ चिरजीवहि सक धाम।
राजा कहाउ जौलगि जग राम नाम॥ ७॥

शब्दार्थ—तजि राम नाम=राम का नाम लेना छोड़कर। यह बोल उचार्यो=(रावण ने) ऐसा कहा। पगलागत=पैर पकडते समय। चार्यो=चारो को। अंध=मोहान्ध, अज्ञानी। उड़ान्यो=शीघ्रता पूर्वक चला। आरतवंत=दुखी। लंकेश=लंका के स्वामी (विभीषण)
भावार्थ:—स्पष्ट है (छन्द:—५,६ में कलहंस तथा ७ वें में हरिलीला)

सेतुबंध

दो०—जँह तहँ बानर सिंधु में, गिरिगन डारत आनि।
शब्द रह्यो भरपूरि महि, रावन कों दुखदानि॥ ८॥

अलंकारः—सन्देह ।

तारक छंदः—सब राम चमू तरि सिंधुहि आई ।
छवि ऋक्षन की धर अंबर छाई ॥
बहुधा शुक सारन को शु बताई ।
फिर लंक मनो बरषा ऋतु आई ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—चमू=सेना । ऋक्षन=रीछ । धर=पृथ्वी । अंबर=आकाश । बहुधा=विस्तार में । शुक सारन=शुक एवं सारन नाम के दो राक्षस विशेष जिन्हे रावण ने सुग्रीव को समझाने के लिए भेजा था ।

भावार्थः—राम की सम्पूर्ण सेना समुद्र पार करके लंका में आ गई, जिसके रीछ पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र छा गए । सुग्रीव ने उस सेना का शुक एवं सारन नाम के राक्षसों से विस्तार के साथ उल्लेख किया और कहा कि (लंका में राम की सेना इस प्रकार छा रही है) मानों वर्षा ऋतु ही फिर से लंका में आ गई हो ।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा ।

रावण—अंगद—संवाद

दोहाः—अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लकेस ।
मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेस ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—आसनगत=सिंहासनारूढ । करहाट=कमल की पीले रंग की छतरी ।

भावार्थः—अंगद छलाँग मारते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ रावण (स्वर्ण के) सिंहासन पर बैठा हुआ था । वह ऐसा जान पडता था मानो कमल की छतरी पर भ्रमर बैठा हो ।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा ।

रावण—'कौन हो, पठये सो कौने, ह्याँ तुम्हैं केहि काम है' ?
अंगद—'जाति बानर, लंकनायक दूत, अंगद नाम है' ॥

रावण–'कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही'।
अंगद–'लंक जारि सँहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कहो ?' ॥ १३ ॥

'कौन के सुत ?' बालि के वह कौन बालि 'न जानिए ?
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिए ॥'
'है कहाँ वह बीर ?' अंगद देवलोक बताइयो।
'क्यों गयो ? रघुनाथ-बान विमान बैठि सिधाइयो' ॥ १४ ॥
'लंक नायक को ?' 'विभीषण, देव दूषण को दहै ?'
'मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै ?'
'मोहि को जग मारिहै ?' 'दुर्बुद्धि तेरिय जानिए।'
'कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिए' ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—अच्छ=अक्षयकुमार। काँख=बगल में। चाँपि=दबाकर। को=कौन। देव दूषण=देवताओं का शत्रु अर्थात् रावण। दहै=जलाने वाला।

भावार्थ—स्पष्ट है।

अलंकार:—गूढ़ोत्तर।

राम राजान के राज आये इहाँ, धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दै, मित्र मंत्री जिते पूँछि देखो सबै॥
राखिजै जाति को, पाँति को वंश को, साधिजै लोक में लोक परलोक को।
आनि कै पाँ परो देस लै, कोस लै आसुही ईश सीता चलै ओक को ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—राखिजै=बचालो। आनि कै=लाकर। पाँ परो=चरणों में पड़ो। आसुही=शीघ्र ही। ईश=हमारे स्वामी। ओक=घर।

भावार्थ:—सरल है (छन्द—गंगोदक)।

रावण—लोक लोकेश स्यों सोचि ब्रह्मा रचे
आपनी आपनी सीव सों सो रहैं।
चारि बाहे धरे विष्णु रच्छा करैं।
बात साँची यहै वेद बानी कहै॥

ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यौं
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै ।
ताहि हौं छाड़ि कै पायँ काके परौं
आजु संसार तो पायँ मेरे परै ॥ १७ ॥

शब्दार्थ:—स्यौं=सहित । सीव=सीमा । भ्रूभंग ही=जरासी भ्रकुटि टेढ़ी करते ही । देवेश=इन्द्र । रुद्रजू=शिवजी ।

भावार्थ:—(रावण कथन) सारे लोक और लोकपालों सहित जिन जिन की रचना ब्रह्मा ने विचारपूर्वक की है, वे सब अपनी अपनी सीमा में रहते हैं । चार भुजा धारण करने वाले भगवान विष्णु इस सृष्टि की रक्षा करते हैं, इस सत्य का उल्लेख वेद करते हैं । ऐसी उस सृष्टि का, देवता, इन्द्र, विष्णु तथा ब्रह्मादि के सहित, शिव अपने जरा से भ्रकुटि निक्षेप से संहार कर देते हैं । (लोकपालों सहित लोक का पालन करने वाले) उन शिव को छोड़कर मैं अन्य किसके पैरों पड़ूँ, आज तो सारा संसार मेरे ही पैरों पड़ता है । (अत मैं तुम्हारे राम को क्या समझूँ)

मदिरा छंद:—'राम को काम कहा ?' 'रिपु जीतहिं'
'कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ ?'
'बालि बली' 'छल सौं' 'भृगुनन्दन
गर्व हर्यो' 'द्विज दीन महा ।'
'दीन सो क्यों ? छिति छत्र हत्यो ;
बिन प्राणनि हैहयराज कियो ।'
'हैहय कौन ?' 'वहै, बिसर्यो ? जिन
खेलत ही तोहि बाँधि लियो' ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—छिति=पृथ्वी । छत्र हत्यो=राजाओं को मारा । हैहयराज=सहस्रार्जुन ।

भावार्थ—सरल है ।

रावण-'कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही'।
अंगद-'नर जारि सँहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही ? ॥ १३ ॥
'कौन के सुत ?' 'बालि के' 'वह कौन बालि' 'न जानिए ?
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए ॥'
'है कहाँ वह बीर ?' अंगद देवलोक बताइयो।
'क्यों गयो ?' 'रघुनाथ-बान बिमान बैठि सिधाइयो' ॥ १४ ॥
'लंक नायक को ?' 'विभीषण, देव दूषण को दहै ?'
'मोहि जीवत होहि क्यों ? 'जग तोहि जीवत को कहै ?'
'मोहि को जग मारिहै ?' 'दुर्बुद्धि तेरिय जानिए।'
'कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिए' ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—अच्छ=अक्षयकुमार। काँख=बगल में। चाँपि=दबाकर। को=कौन। देव दूषण=देवताओं का शत्रु अर्थात् रावण। दहै—जलाने वाला।

भावार्थ:—स्पष्ट है।

अलंकार:—प्रश्नोत्तर।

ताहि भ्रू भंग ही देव देवेश स्यों
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै ।
ताहि हौ छांडि कै पायँ काके परौं
ग्राजु संसार तौ पाँय मेरे परै ॥ १७ ॥

शब्दार्थ.—स्यों=सहित । सीव=सीमा । भ्रू भंग ही=जरासी भृकुटि टेढ़ी करते ही । देवेश=इन्द्र । रुद्रजू=शिवजी ।

भावार्थ:—(रावण कथन) सारे लोक और लोकपालों सहित जिन जिन की रचना ब्रह्मा ने विचारपूर्वक की है, वे सब अपनी अपनी सीमा में रहते हैं । चार भुजा धारण करने वाले भगवान विष्णु इस सृष्टि की रक्षा करते हैं, इस सत्य का उल्लेख वेद करते हैं । ऐसी उस सृष्टि का, देवता, इन्द्र विष्णु तथा ब्रह्मादि के सहित, शिव अपने जरा से भृकुटि निक्षेप से संहार कर देते हैं । (लोकपालों सहित लोक का पालन करने वाले) उन शिव को छोड़कर मैं अन्य किसके पैरो पड़ूँ, ग्राज तो सारा संसार मेरे ही पैरो पड़ता है । (ग्रत मैं तुम्हारे राम को क्या समझूँ)

मदिरा छंद:—'राम को काम कहा ?' 'रिपु जीतहिं'
'कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ ?'
'बालि बली' 'छल सौं' 'भृगुनन्दन
गर्व हर्‌यो' 'द्विज दीन महा ।।'
'दीन सो क्यो ? छिति छत्र हत्यो
बिन प्राणनि हैहयराज कियो ।'
'हैहय कौन ?' 'वहै, बिसर्‌यो ? जिन
खेलत ही तोहि बाँधि लियो' ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—छिति=पृथ्वी । छत्र हत्यो=राजाओं को मारा । राज=सहस्त्रार्जुन ।

भावार्थ—सरल है ।

अंगद—सिंधु तर्यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो उन बारिधि बाँधि कै बाट करी॥
अजहूँ रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हें दसकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी जरी लंक जराइ जरी॥१९॥

शब्दार्थ—बाट = रास्ता। तूलनि = रुई से भी। जरी = जड़ी हुई। न जरी = नहीं जली। जराइ जरी = जड़ाऊ काम से जड़ित।

भावार्थ—सरल है। अलंकार—यमक।

रावण—महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै॥
क्षपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको।
करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥२०॥

शब्दार्थ:—महामीचु = महामृत्यु। प्रतीहार = द्वारपाल। ह्वै कै = बनकर। सूर = सूर्य। कृपाजोवै = कृपा की अभिलाषा करता है। क्षपानाथ = चन्द्रमा।

भावार्थ—रावण कहता है कि हे अंगद! महामृत्यु दासी बनकर सदैव जिसके चरण धोती है, सूर्य द्वारपाल बनकर जिसकी कृपा की अभिलाषा करता रहता है तथा चन्द्रमा जिसके ऊपर छत्र धारण किए रहता है, उसका सुग्रीव जैसा तुच्छ शत्रु क्या बिगाड़ सकता है?

भुजंग प्रयात छंद—सखा मेघमाला सिखी पाकहारी।
करै कोतवाली महादंड धारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके॥२१॥

शब्दार्थ—सखा = सखा, मित्र। सिखी = अग्नि। पाकहारी = रसोइया। महादण्डधारी = यमराज। बापुरो = बेचारा।

भावार्थ—(रावण कथन) जिसके यहाँ मेघमाला मित्र का, अग्नि रसोइये का और यमराज कोतवाल का काम करते हैं तथा जिसके द्वार पर

बैठ कर ब्रह्मा वेद पाठ करता है, उसे सुग्रीव जैसे दीन शत्रु की क्या चिन्ता है ?

भुजंग प्रयात छंद—डरै गाय विप्रै, अनार्थै जो भाजै।
परद्रव्य छांडै परस्त्रीहिं लाजै॥
परद्रोह जासों न होवै रती को।
सु कैसे लरै वेप कीन्हे यती को॥२२॥

भावार्थ:—जो गाय तथा ब्राह्मण से डरता है, जो अनाथों को देखकर भागता है, दूसरे के धन की अवहेलना करता है तथा परस्त्री से लज्जित होता है और जो किंचित भी दूसरे का विरोध नहीं कर सकता, (ऐसा अशक्त राम) यती का वेप धारण करके मुझ जैसे शक्तिशाली व्यक्ति से भला क्या लड़ेगा।

अलंकार:—व्याजस्तुति।

वंशस्थ छंद—तपी जपी विप्रनि छिप्र ही हरौं।
अदेव-द्वेषी सब देव संहरौं॥
सिया न दैहौं, यह नेम जी धरौं।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं॥२३॥

शब्दार्थ:—छिप्र=शीघ्र ही। अदेव द्वेषी=राक्षसों के शत्रु। नेम=व्रत। अमानुषी=मनुष्यों से रहित। अवानरी=वानरों से रहित।

भावार्थ:—हे अंगद मैं जप तथा तप करने वाले ब्राह्मणों को शीघ्र ही मार दूंगा तथा राक्षसों के शत्रु सारे देवताओं का संहार कर दूंगा। अपने मन में मैं यह व्रत धारण करता हूँ कि मैं सीता को कभी नहीं लौटाऊँगा तथा इस पृथ्वी को मनुष्य और वानरों से रहित कर दूंगा।

अंगद:—पाहन तें पतनी करि पावन टूक कियो हरको धनु कोरे ?
छत्र-विहीन करी छन में छिति गर्व हर्यो तिनके बल कोरे ?
पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहूँ धरको रे।
होइ नरायन हूँ पै न ये गुन, कौन इहाँ नर बानर कोरे॥२४॥

शब्दार्थ—पाइन न सिला में। पुर्गनिवे पान = कमल के पत्ते। मनहुँ धरको है = इतने पर भी तुम्हें शंका है।

भावार्थ—अंगद कहता है कि जिस राम ने शिला से सुन्दर स्त्री (अहल्या) बना दी, शंकर के धनुष को तोड़ दिया, जिसने एक क्षण में पृथ्वी को राजाओं से विहीन करने वाले परशुराम की शक्ति के अहंकार को चूर किया और जिसके प्रभाव से पर्वतों का समूह समुद्र में कमल के पत्ता के समान तैरने लगा है इतने पर भी उन राम की शक्ति के सम्बन्ध में तुझे शंका है। राम के ये सब कार्य ऐसे हैं जो स्वयम् भगवान नारायण से भी नहीं हो सकते। ऐसी स्थिति में तू यहाँ (राम की सेना में) किसको नर-बानर (ऐसे साधारण प्राणी) समझता है।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

लंकावरोध

दिसि दच्छिन अंगद, पूर्व नील। पुनि हनुमन्त पश्चिम सुसील॥
दिसि उत्तर लछमण सहित राम। सुग्रीव मध्य कीन्हे बिराम ॥२५॥
संग यूथप यूथप बल बिलास। पुर फिरत बिभीषन आस पास॥
निसि बासर सबको लेत सोधु। यहि भाँति भयो लंका निरोधु ॥२६॥
तब रावन सुनि लंका निरोध। उपज्यो तन मन अति परम क्रोध॥
राच्छो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि। दच्छिनहिं महोदर गयो दौरि ॥२७॥
भयो इन्द्रजीत पश्चिम दुवार। है उत्तर रावन बल उदार॥
कियो बिरूपाच्छ थित मध्यदेस। कर्‍यो नरांतक चहुँधा प्रवेस ॥२८॥

शब्दार्थ—कीन्हे बिराम = स्थित किया। यूथप = सेनापति। यूथपबल बिलास = सेनापति के उपयुक्त बल अर्थात् सेना में पुष्ट। पुर = नगर। सोधु = सँभाल करते हैं। निरोध = घेरा, घिराव। पौरि = द्वार। बल उदार = अत्यन्त बली। मध्यदेस = केन्द्र स्थान में। चहुँधा = चारो द्वार।

भावार्थ—सरल एवं स्पष्ट है।

तब निकस्यो रावणसुत सूरो । जेहि रन जीत्यो हरि बलपूरो ।
तब बल माया-तम उपजायो । कपिदल के मन संभ्रम छायो ॥ २९ ॥
काहू न देखि परै वह योधा । यद्यपि हैं सिगरे बुधि बोधा ॥
नायक सों अहिनायक साँध्यो । सोदर स्यों रघुनायक बाँध्यो ॥ ३० ॥
रामहिं बाँधि गयो जब लंका । रावण की सिगरी गयी संका ॥
देखि बँधे तब सोदर दोऊ । यूथप यूथ त्रसे सब कोऊ ॥ ३१ ॥
इन्द्रजीत तेहि लै उर लायो । आजु काज सब भो मन भायो ॥
कै विमान अधिरूढित धाये । जानकीहिं रघुनाथ दिखाये ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—सूरो=शूरवीर । हरि=इन्द्र । बलपूरो=वली । संभ्रम=धोखा । बुधि-बोधा=बुद्धि देने वाले । अहिनायक-नायक=नागफाँस, सर्पबाण । सांध्यो=सन्धान किया । सोदर=सहोदर, लक्ष्मण । स्यों=सहित । संका=दुश्चिंता, भय । त्रसे=भयभीत हुए । तेहि=उसने, रावणने । कै विमान अधिरूढित धायो=विमान पर बैठ कर शीघ्रता से चला ।

भावार्थ:—स्पष्ट है ।

दोहा:—कालसर्प के कवल तें, छोरत जिनको नाम ।
बँधे ते ब्राह्मण-वचन वस, माया-सर्पहि राम ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—कवल=ग्रास, फँदा । छोरत=छोड़ता है, मुक्त करता है । माया- सर्पहिं=माया जनित नागफाँस ।

भावार्थ:— (कवि कथन) जिनका नाम लेने से प्राणी कालरूपी सर्प के ग्रास (फँदे) से छूट जाता है, वे ही राम ब्राह्मण के वचनों से नागफाँस में बँध गए ।

अलंकार.—रूपक से युक्त-निदर्शना ।

पन्नगारि तबही तहँ आये । व्याल-जाल सब मारि भगाये ।
लंक माँझ तबही गइ सीता । सुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥ ३४ ॥

जोर ही लक्ष्मणैं लेन लाग्यो जही। मुष्टि छाती हनूमंत मार्‌यो तही॥
आसु ही प्राण को नास सो ह्वै गयो। दंड द्वै तीन में चेत ताको भयो॥३८॥

शब्दार्थ:—आसु ही=शीघ्र ही। दंड=घड़ी।

भावार्थ:—रावण जैसे ही शक्तिपूर्वक लक्ष्मण को उठाने को हुआ, हनुमान ने उसकी छाती पर घूँसा मारा, जिसके प्रहार से उसको ऐसा अनुभव हुआ मानो शीघ्र ही उसके प्राण से निकल गए तथा वह मूर्छित हो गया और दो तीन घड़ी बाद उसे चेत हुआ।

अलंकार:—उत्प्रेक्षा (छन्दः—स्रग्विनी)

दोधकः—यद्यपि है अति निर्गुनताई। मानुष देह धरे रघुराई॥
लक्ष्मण राम जही अवलोक्यो। नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो॥३६॥

भावार्थ—यद्यपि राम गुणातीत हैं, तो भी मानव शरीर धारण किए होने के कारण, जैसे ही उन्होंने लक्ष्मण को मूर्छितावस्था में देखा, उनके नेत्रों से आँसू न रुक सके।

राम—विलाप

बारक लक्ष्मण मोहि विलोको। मोकहँ प्राण चले तजि रोको॥
हौं सुमरो गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे॥४०॥
लोचन बाहु तुही धनु मेरो। तू बल विक्रम, वारक हेरो॥
तो बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौ, कछु झूठ न भाखौं॥४१॥
मोहि रही इतनी मन संका। देन न पायी विभीषण लंका॥
बोलि उठो प्रभु को प्रन पारो। नातरु होत है मो मुख कारो॥४२॥

शब्दार्थ—बारक=एकबार। मोकहँ=मेरे लिए। हौं=मैं। केतिक=कौन—कौन से। हेरो=देखो। भाखौं=कहता हूँ। पारो=पूर्ण करो। नातरु=नहीं तो। कारो=काला।

भावार्थ—सरल है।

मैं बिनऊँ रघुनाथ करो अब। देव! तजो परिवेदन को सब॥
औषधि मैं निसि में फिर लावहि। केशव सो सब साथ जियावहि॥४३॥

भावार्थ—(विभीषण कहते हैं कि) हे देव ! मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूँ वह करिए । ऐसे कलपने को छोड़िए । किसी ऐसे व्यक्ति को भेजिए जो रात्रि में ही (मूर्च्छा की) औषधि लेकर लौट आए और युद्ध में मरे हुए हमारे वीरों के साथ ही हम सबको भी जीवन प्रदान करे ।

हनुमान का औषधि लेने जाना

सोदर सूर को देखत ही मुख । रावन के मिटिहैं पुरवैं सुख ॥
बोल सुने हनुमन्त कर्‌यो पनु । कूदि गयो जहँ औषधि को बनु ॥ ६॥

भावार्थ—(विभीषण ने कहा कि) आपका सहोदर लक्ष्मण वैसे ही (प्रभात को) सूर्य का मुख देखेगा रावण की कामना पूर्ण हो जायगी) विभीषण के ऐसे वचन सुनकर हनुमान ने (औषधि लाने का) प्रण किया और छलांग मार कर औषधि के वन—द्रोण पर्वत पर पहुँच गये ।

हन्यो विघ्नकारी बली वीर वामं । गयो शीघ्रगामी गत एक यामं ।
चल्यो लै सबै पर्वतै कै प्रणामै । न जान्यो विशल्यौषधी कौन नामै ॥ ७॥

शब्दार्थ—विघ्नकारी रुकावट डालने वाला । वामं कुटिल । यामं—पहर । विशल्यौषधि घाव को पूरने वाली औषधि । तामै उसमें ।

भावार्थ:—(द्रोण-पर्वत की ओर जाते समय) हनुमान ने मार्ग में रुकावट डालने वाले बली, एवं कुटिल वीर (कालनेमी) को मारा और एक पहर बीतते बीतते शीघ्रता-पूर्वक वहाँ पहुँचा । वह न जानने के कारण कि उस पर्वत पर घाव को पूरने वाली औषधि कौनसी है, वह इस कारण सारे पर्वत को ही उठा करके चला ।

लक्ष्मण का मूर्च्छा से मुक्त होना

मोदक छंद—आये भरे लक्ष्मण सूरि ढिंढे ।
दूनी दुख शोक दरीर लिर ॥

कोदंड लिये यह बात ररै।
लंकेश न जीवत जाइ धरै॥ ४६ ॥

श्रीराम तही उर लाइ लियो।
सूँघ्यो सिर आसिष कोटि दियो॥
कोलाहल यूथप यूथ कियो।
लंका दहल्यो दसकंठ हियो॥ ४७ ॥

शब्दार्थ:—मूरि=जड़ी। छिये=छूने पर। शुभ शोभ=सुन्दर शोभा। कोदंड=धनुष। ररै=कहने लगे। तही=त्योंही। लाइ लियो=लगा लिया। कोलाहल=आनन्दमय स्वर। यूथपयूथ=सेनापतियों सहित सेना में।

शब्दार्थ:—सरल है।

कुम्भकर्ण युद्ध

चामर छंद:—कुंभकर्ण रावनै प्रदच्छिनाहि दै चल्यो।
हाइ हाइ ह्वै रह्यो अकाश आसु ही हल्यो॥
मध्य छुद्र घंटिका किरीट सीस सोभनो।
लच्छ पच्छ सो कलिंद्र इन्द्र पै चल्यो मनो॥४८

शब्दार्थ:—रावणैं=रावण की। प्रदच्छिणा=परिक्रमा। आसु=शीघ्र। मध्य=शरीर के मध्य भाग अर्थात् कमर में। छुद्र=छोटी छोटी। सोभनो=सुन्दर। लच्छ पच्छ सो=लाखों पंख धारण करके। कलिन्द=पर्वत विशेष।

भावार्थ:—स्पष्ट है। अलंकार:—उत्प्रेक्षा।

कुम्भकरण—न हौं ताड़का, हौं सुबाहू न मानो।
न हौं शंभु-कोदंड, साँचो बखानो॥
न हौं ताल, बाली, खरै जाहि मारो।
न हौं दूषणो, सिंधु, सूधै निहारो॥४६॥

शब्दार्थ—तहीं = त्योंहि। ताल के केतु सों = ताल की ध्वजा के समान। ताल = ताड़ का वृक्ष। हीनो = रहित। धाइ करै = प्रहार करता हुआ। ओर = तरफ, ओर। मुंडमाली = शंकर।

भावार्थ:—जैसे ही कुंभकर्ण ताल की ध्वजा के समान ताड़वृक्ष को अपने हाथों में लेकर लड़ने को आया कि रामने उसके हाथ पैर काट लिए। (हाथ पैर कटने के उपरान्त भी) वह कुपारी जब प्रहार करता हुआ मुड़कर राम की ओर बढ़ा तो राम ने एक ऐसा बाण मारा जो उसका सिर काट कर महादेव की ओर उड़ गया।

भुजंग प्रयात छंद:—तहीं स्वर्ग में दुंदुभी दीह बाजें।
करयो पुष्प की वृष्टि जै देव गाजें॥
दशग्रीव सोचे प्रयो सोकहारी।
भयो लंक ही मध्य आतंक भारी॥५४॥

शब्दार्थ—तहीं = त्योंही। दीह = बड़े बड़े। गाजें = हर्षपूर्ण गर्जना करने लगे। सोकहारी = लोक को सताने वाला। आतंक = हाहाकार।

भावार्थ—स्पष्ट है।

दोहा:—तबही गयो निकुंभिला, होम हेत इन्द्रजीत।
कह्यो तहाँ रघुनाथ सौं, मतो विभीषन मीत॥५५॥

शब्दार्थ:—निकुंभिला = रावण की यज्ञशाला। होम हेत = यज्ञ करने के लिए। इन्द्रजीत = मेघनाद। मतो = मंत्रणा, सलाह।

भावार्थ:—स्पष्ट एव सरल है।

मेघनाद वध

गितिका छंद—रन इन्द्रजीत अजीत लक्ष्मण अस्त्र-शस्त्रनि संहरै।
सर एक एक अनेक मारत बुंद मंदर ज्यों परै॥
तब कोपि राघव शत्रु को सिर बान तीच्छन उद्धरयो।
दसकंध संध्यहि को कियो सिर जाइ अञ्जुलि में परयो॥५६॥

चंचरी-छंदः—इन्द्र श्री रघुनाथ को रथहीन भूतल देखिकैं।
वेगि मारथि सों कह्यउ रथ जाहि लै सुविशेपिकैं ॥
तून अच्छय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को।
आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय प्रमान को ॥६०॥

शब्दार्थ —सविशेष कै=विशेष रूप से। तूण अक्षय बाण को=ऐसा तूणीर (तरकश) जिसके बाण कभी समाप्त न हों। अभेद तनत्राण=ऐसा कवच जो बिद्ध न हो सकें। अप्रमेय प्रमाण =(रथ को) बहुत बड़ा आकार का बनाकर।

भावार्थः—जब इन्द्र ने श्रीराम को युद्ध में जाते समय बिना रथ के पैदल ही देखा तो उसने अति शीघ्र अपने सारथी से कहा कि रथ को विशेषरूप से सुसज्जित करके श्रीराम के पास ले जाओ। (इन्द्र के आदेश से) सारथी अक्षय बाणों वाला तूणीर तथा अभेद्य कवच लेकर तथा रथ को बहुत बड़े आकार वाला बनाकर रण क्षेत्र में आया।

चंचरी छंदः—राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावन के बढ़्यो।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल सो मढ्यो॥
सैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल सहरे।
ऋच्छ बानर भेदि तच्छन लच्छधा छतना करे ॥६१॥

शब्दार्थः—सरावली=बाणों का समूह। मढ्यो= छागया। सैल= पर्वत। सिकता=बालू। दृष्टि के बल सहरे=दृष्टि की शक्ति नष्ट होगई अर्थात् बाणों की अधिकता से कुछ दिखाई नहीं देता था। लच्छधा= लाखों छेदों से। छतना=छता (मधुमक्खियों का)।

भावार्थः—राम को रणक्षेत्र के मध्य देखकर रावण क्रुद्ध होगया उसने अपनी बीस भुजाओं से इतने बाण बरसाये कि पृथ्वी और उनसे छागए। पर्वत चूर होकर बालू हो गए, तथा बाणों की से ऐसा अन्धकार छागया कि कुछ दिखाई न देता था और उन

बाणों ने शीघ्र ही रीछ और बानरों के शरीरों में लाखों छेद करके उन्हें छलनी जैसा बना दिया।

अलंकार.—अत्युक्ति।

सुंदरी.—बानर गाथ बिधे सब बानर। जाय परे मलयाचल को धर॥
सूरज मंडल में एक रोवत। एक अकाश नदी मुख धोवत॥६२॥
एक गये यमलोक सहे दुख। एक कहैं भव भूतन को सुख॥
एक ते सागर माँझ परे मरि। एक गये बड़वानल में जरि॥६३॥

शब्दार्थ.—धर=पृथ्वी पर। एक=कोई। अकाशनदी=आकाश गंगा। भव भूतन को सुख=संसार के पंचतत्त्वों में ही मिलने में सुख है।

भावार्थ—सरल है।

दौरे हनुमन्त बली बल सों। लै अंगद संग सबै दल सों॥
मानो गिरिराज तजे डर को। घेरे चहुँ ओर पुरन्दर को॥६४॥

भावार्थ.—(ऐसी स्थिति में) बलशाली हनुमान तथा अंगद सारी सेना को समेट कर रावण को घेरने के लिए दौड़े। उनका वह घेरा ऐसा प्रतीत होता था मानो बड़े बड़े पर्वत भय को छोड़कर चारों ओर से इन्द्र को घेरे हुए हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। छन्द—तोटक।

हरिगीत-अंगद रनअंगन सब अंगन सुरभार कै।
अक्षकुमारहिं अक्षरिपुहिं [illegible] सुभार कै॥
बानरगन बानन सन बेगन उबहि [illegible]।
रावन दुखदावन जगपावन [illegible] [illegible]॥६५॥

शब्दार्थ—रनअंगन=रणांगन में। [illegible]—[illegible]। सुरभार कै=शिथिल करके। अक्षरिपु—अक्षकुमार के शत्रु हनुमान। [illegible]=मिलानेवाली। सुभार कै=सम्भालकर। सन=से, द्वारा। [illegible]=[illegible] दिया। दुखदावन=दुखदाई। जगपावन=(राम का विशेषण)। [illegible]—सम्मुख।

भावार्थः—रावण ने रणक्षेत्र में अंगद के सारे अंगों को शिथिल करके, जामवन्त तथा हनुमान को अपनी निशानेबाजी दिखाकर, जब अन्य वानरों को अपने बाणों से सामने से खदेड़ दिया, तब वह दुखदाई रावण जगपावन श्रीराम के सम्मुख आकर उनसे भिड़ा।

दोहा:—रघुपति पठयो आसुही, असुहर बुद्धिनिधान।
दशसिर दशहूँ दिशन को, बलि दै आयो बान ॥६६॥

शब्दार्थ—आसुही= शीघ्र ही। असुहर=प्राणहारी (बाण)। बुद्धिनिधान=राम का विशेषण।

भावार्थः—बुद्धिनिधान राम ने शीघ्र ही प्राणों का हरण करने वाला एक बाण चलाया जो रावण के दसों सिरों को दसो दिशाओं में बलि चढ़ा कर पुनः उनके तूणीर में आगया।

मदन मनोरमा छंद—भुव भारहि संयुत राकस को
गण, जाइ रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय शब्द समेतहि केसव,
राज विभीषन के सिर जाग्यो।
मयदानव नंदिनि के सुख सों,
मिलि कै सिय के हिय को दुख भाग्यो॥
सुर दुंदुभि सीस गजा, सर राम को।
रावन के सिर साथहि लाग्यो ॥६७॥

शब्दार्थः—संयुत=साथ ही। मयदानव नन्दिनि=मन्दोदरी। गजा=नक्काड़े का डंका।

भावार्थ—पृथ्वी के भार के साथ ही राक्षसों का समूह पाताल को चला गया। संसार में राम के जयजयकार के शब्द के साथ ही विभीषण . सुख का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मन्दोदरी का सुख सीता के हृदय के

दल के साथ मिलकर भाग गया । रावण के सिर पर राम के बाण के साथ
ही देवताओं के नगाड़े पर डंका पड़ा ।

अलंकार—सहोक्ति ।

रामः—अब जाहु विभीषन रावन लैके ।
सकलत्र सबन्धु क्रिया सब कैके ॥
जन सेवक संपति कोष सभारौ ।
मयनंदनि के सिगरे दुख टारौ ॥६८॥

शब्दार्थ—सकलत्र=स्त्री सहित । क्रिया सब कैकै=(रावण की) सारी मृतक क्रियाएँ करके । जन=परिजन, कुटुम्बी । सिगरे—सब ।

भावार्थ—स्पष्ट है । छन्द—तारक ।

सीता की अग्नि-परीक्षा

तारक छन्द—सिगरे तन भूषन भूषित कीने ।
धरि कै कुसुमावलि अंग नवीने ॥
द्विज देवनि बंदि पढ़ी सुभगीता ।
तब पावक अंक चली चढ़ि सीता ॥६९॥

शब्दार्थ—नवीने=नवविकसित । सुभगीता वंदि पढ़ी=प्रशंसित गाथा (विरुदावली) पढ़ी । पावक अंक—अग्नि की गोदी में ।

भावार्थ—सरल है ।

भुजंग प्रयात छन्द—सवस्त्रा सबै अंग शृंगार सोहै ।
विलोकै रमा देव देवी विमोहैं ॥
पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्रगीता ।
लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता ॥७०॥

शब्दार्थ—सवस्त्रा=वस्त्रों सहित । विलोकै=देखकर । रमा—लक्ष्मी । कन्यका शुभ्रगीता=पवित्र आचरण वाली पुत्री । लसै— शोभित है ।

भावार्थः—स्पष्ट है।

दोहा:—इन्द्र वरुण यम सिद्ध सब, धर्म सहित धनपाल।
ब्रह्म रुद्र लै दसरथहिं, आय गये तेहि काल ॥७१॥

शब्दार्थः—धर्म=धर्मराज। धनपाल=कुबेर। लै दसरथहिं=दशरथ को लेकर।

भावार्थ:—सरल है।

अग्निः—श्री रामचन्द्र यह संतत शुद्ध सीता।
ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्र गीता॥
हूजै कृपालु गहिजै जनकात्मजाया।
योगीश ईश तुम हौ यह योगमाया ॥७२॥

शब्दार्थ.—सतत=सदैव ही। शुभ्रगीता=उज्ज्वल यश। गहिजै=ग्रहण करिए। जनकात्मजाया=जनक की पुत्री जानकी। योगीश ईश=शिव के इष्टदेव ईश्वर।

भावार्थ.—स्पष्ट एवं सरल है।

स्वदेश-प्रत्यागम

दोहा:—वानर राच्छस रिच्छ सब, मित्र कलत्र समेत।
पुष्पक चढि रघुनाथ जू, चले अवधि के हेत ॥७३॥

शब्दार्थः—कलत्र=स्त्री। पुष्पक=पुष्पक विमान। अवधि के हेत=वन से लौटने की अवधि समाप्त हो गई है, यह सोच कर।

भावार्थः—सरल है।

पद्धरिकाः—ऋषिराज करी पूजा अपार। पुनि कुशल प्रश्न पूछी उदार॥
शत्रुघ्न भरत कुसली निकेत। सब मित्र मंत्रि मातन समेत ॥८४॥

भावार्थः—रामने ऋषि शिरोमणि भारद्वाज की अनेक प्रकार से की; तदुपरान्त उन्होंने उदारता पूर्वक अयोध्या का कुशल सवाद पूछा कि

अयोध्या में शत्रुघ्न, मित्र, मन्त्रि और माताओं सहित भरत, कुशल तो है न ?

राम—हनुमन्त बली तुम जाहु तहाँ। मुनि-वेष भरत्थ बसत जहाँ॥
ऋषि के हम भोजन आजु करें। पुनि प्रात भरत्थहि अंक भरें॥७५।
भावार्थः—सुगम है।

उत्तर कांड

अवध-प्रवेश

अवधपुरी कहँ राम चले जब, ठौरहि ठौर विराजत है सब ॥
भरत भये शुभ सारथि शोभन, चमर धरे रविपुत्र विभीषन ॥१॥

शब्दार्थः—कहँ = को । शोभन = सुन्दर । रविपुत्र = सुग्रीव ।

भावार्थः—सरल है (जिस समय राम भरत के साथ नन्दीग्राम से अयोध्या जाते हैं, उस समय का वर्णन है) ।

भूतल हू दिवि और विराजें, दीह दुहूँ दिसि दुन्दुभि बाजें ।
भाट भले विरदावलि गावें, मोद मनो प्रतिबिंब बढ़ावें ॥२॥

भूतल की रज देव नसावें, फूलन की बरषा बरषावें ।
हीन-निमेष सबै अवलोकें, होड परी बहुधा दुहुँ लोकें ॥३॥

शब्दार्थ.—दिवि = आकाश । प्रतिबिंब = अयोध्यावासी तथा देवताओ का पारस्परिक प्रतिबिम्ब । हीन-निमेष = अपलक, टकटकी लगाकर । बहुधा = विविध प्रकार से ।

भावार्थ.–(राम के अवध प्रवेश के समय) पृथ्वी और आकाश दोनो स्थानो पर भीड लगी हुई है तथा बड़े बडे नक्काड़े बज रहे हैं । भाट मधुर स्वर में विरुदावली गा रहे हैं । पृथ्वी पर अयोध्या की जनता और आकाश में देवताओ का यह आनन्द मनाना ऐसा प्रतीत होता है मानो देवताओ के प्रतिबिंब पृथ्वी पर तथा अवध जनो के प्रतिबिंब आकाश में आनन्द मना रहे हो ।

पृथ्वी से उडती हुई धूल जो मानो देवताओ को ढकने के लिए उड है, उसे देवतागण पुष्पवृष्टि कर दबा रहे है । देवता तथा अवधवासी

दोहा.–मिले जाय जननीन कों, जबही श्री रघुराइ।
करना रस उद्‌भुत भयो, मोपे कह्यो न जाइ ॥७॥

भावार्थः—अत्यन्त सरल है।

रामतिलकोत्सव

सातहु सिंधुन के जल रूरे, तीरथ जालनी के पय पूरे।
कचन के घट वानर लीने, आइ गये हरि आनँद भीने ॥ ८ ॥

भावार्थ—राम प्रेम में निमग्न वानरगण, राम के राज्याभिषेक के लिए, सातो समुद्र और सम्पूर्ण तीर्थों के सुन्दर जल से भरे कंचन घटों को लेकर आ गए।

दोहाः—सकल रत्नमय मृत्तिका, शुभ औषधी अशेष।
सात द्वीप के पुष्प फल, पल्लव रस सविशेष ॥ ६ ॥

भावार्थ–सब प्रकार के रत्न, सब प्रकार की मिट्टी, सम्पूर्ण शुभ औषधियां और सातो द्वीपो के पुष्प, फल तथा पल्लव, विशेष रस (मधु, घृतादि) एकत्रित किए गए हैं।

विशेषक छंदः–भांतिन भांतिन भाजन राजत कौन गनै।
ठौरहि ठौर रहे जनु फूलि सरोज घनै ॥
भूपन के प्रतिबिंब विलोकत रूप रमे।
खेलत हैं जल मांझ मनो जलदेव बसे ॥ १० ॥

भावार्थ.–वहां स्थान २ पर नाना प्रकार के पात्र सुशोभित हो रहे हैं, जिनको कौन गिन सकता है। वे पात्र ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे अनेक कमल विकसित हो रहे हों। उन पात्रो के जल में पड़ने वाले राजाओं के प्रतिबिम्ब को देखकर ऐसा लगता है जैसे मानो जल में देवता विद्यमान हों।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा।

पद्धरिका छंदः–मृगमद मिली कुंकुम सुरभि नीर।
घनसार सहित अबंर उसीर ॥

घसि केसरि सों बहु विविध नीर।
छिति छिरके चर थावर सरीर ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—मृगमद कस्तूरी। कुंकुम- रोली। सुरभि सुगंधि पूर्ण। घनसार= कपूर। अम्बर सुगंधित द्रव्य विशेष। उसीर खस। छिति=पृथ्वी। थावर- अचल जड।

भावार्थ—कस्तूरी रोली, कपूर अंबर, खस और बहुत सी केसर को घिस कर जो विविध प्रकार का सुगंधित जल तैयार किया गया है वह सब जगह पृथ्वी पर तथा चर तथा अचल व्यक्तियों के शरीरों पर छिड़का गया है, जिससे चारों ओर का वातावरण सुवासित हो रहा है।

अलंकार—उदात्त।

बहु वर्ण फूल फल दल उदार। तह भरि राखे भाजन अपार ॥
तहँ पुष्प वृक्ष सोभैं अनेक। मणिवृक्ष स्वर्ग के वृक्ष एक ॥ ॥

भावार्थ—वहाँ नाना रंगों के फूल, फल और पल्लव बहुत अधिक मात्रा में अनेक पात्रों में भरे रखे हैं। अनेक पुष्पों के वृक्ष भी वहाँ सुशोभित हो रहे हैं जो सोने से बने और मणियों से जड़े एक से एक सुन्दर हैं।

अलंकार—उदात्त।

तेहि ऊपर रच्यो एक बितान। दिवि देखन देवन के विमान ॥
दुहूँ लोक होत पूजा-विधान। सब नृत्य गीत बादित्र गान ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—बितान=चँदोवा। दिवि= आकाश। बादित्र बाजे आदि।

भावार्थ—स्पष्ट है।

तह ऊपरि को आसन अनूप। बहु रचित हेममय विश्वरूप।
तहँ बैठे आपुन आइ राम। [illegible] रचित काम ॥ १४ ॥

भावार्थ -। [illegible] का एक अनुपम [illegible] के स्वर्णमय [illegible]

सिंहासन है। उसी सिंहासन पर सीता सहित राम आकर बैठे जो ऐसे लगते थे मानो सुन्दर कामदेव ही रति सहित विद्यमान हों।

जनु घन दामिनि आनंद देन।
तरुकल्प कल्पवल्ली समेत ॥
है कैधौं विद्या सहित ज्ञान।
कै तपसयुत मन सिद्धि जान ॥ १५ ॥

भावार्थ—(राम और सीता सिंहासन पर ऐसे लगते थे) मानो बिजली सहित मेघ दर्शकों को आनन्दित कर रहा हो, अथवा कल्पवृक्ष ही कल्पता के साथ विद्यमान हो, अथवा विद्या के सहित ज्ञान या तप के साथ सिद्धि हो।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा से पुष्ट सन्देह।

कै विक्रम युत कीरति प्रवीन। कै श्री नारायन सोभलीन।
कै अति शोभित स्वाहा सनाथ। कै सुंदरता शृंगार साथ ॥ १६ ॥

भावार्थः—या पराक्रम के साथ कुशल कीर्ति हो अथवा लक्ष्मी के साथ नारायण ही सुशोभित हो, अथवा अपने नाथ सहित (अग्नि सहित) स्वाहा ही पूर्णरूपेण शोभित हो, या शृंगार के साथ सुन्दरता हो।

अलंकार—सन्देह।

केशव शोभन छत्र विराजत। जा कहँ देखि सुधाधर लाजत ॥
शोभित मोतिन के मनि के गनु। लोकन के जनु लागि रहे मनु ॥१७॥

शब्दार्थ—शोभन=सुन्दर। जाकहँ=जिसको। सुधाधर=चन्द्रमा। मनु=मन।

भावार्थ:—सरल है।

अलंकारः—उत्प्रेक्षा।

दोहा—आयी जब अभिषेक की, घटिका केसवदास।
बाजे एकहि बार बहु दुन्दुभि दीह अकास ॥ १८ ॥

भावार्थ:—अत्यन्त सरल है।

सेना छंद—तब लोकनाथ विलोकि कै रघुनाथ को निज हाथ।
सविशेष सों अभिषेक कै पुनि उच्चरी शुभ गाथ॥
ऋषिराज इष्ट वसिष्ठ सों मिलि गाधिनंदन आइ।
पुनि बाल्मीकि वियास आदि जिते हुते मुनिराइ॥ २९॥

रघुनाथ शंभु स्वयंभु को निज भक्ति दी सुख पाइ।
सुरलोक को सुरराज को किय दीह निर्भय राइ॥
विधि सों ऋषीशन सों विनय करि पूजियो परि पाइ।
बहुधा दई तपवृद्ध को सब सिद्धि-सिद्ध सुभाइ॥ ३०॥

शब्दार्थ:—लोकनाथ=ब्रह्मा। उच्चरी शुभगाथ=आशीर्वचन कहा। इष्ट=गुरु। गाधिनंदन=विश्वामित्र। हते=थे। स्वयंभू=ब्रह्मा। किय दीह=कर दिया। राइ=राज्य।

भावार्थ—तब ब्रह्मा ने राजतिलक का मुहूर्त आया देखकर अपने हाथ से, विशेषरूप से विधि पूर्वक, राम का अभिषेक किया और आशीर्वाद दिया। फिर कुलगुरु ऋषिराज वशिष्ठ के साथ मिलकर विश्वामित्र ने अभिषेक किया। तदुपरान्त बाल्मीकि तथा व्यासादि जितने अन्य मुनिराज थे उन्होंने अभिषेक किया। श्रीराम ने शिव और ब्रह्मा को हर्षित होकर अपनी भक्ति प्रदान की और देवताओं और इन्द्र के राज्य को पुनः निर्भय कर दिया। फिर विधिपूर्वक ऋषियों की विनय करके, उनके चरण स्पर्श कर पूजा की और सिद्ध पुरुष के भाव से उन्हें उनकी तपस्या के फल स्वरूप सारी सिद्धियाँ प्रदान की।

राम राज्य-वर्णन

सर्व जीव हैं सर्वदानंद पूरे। जपी संयमी विक्रमी साधु सूरे॥
सुखी सर्वदा सर्व विद्या विलासी। सदा सर्व सम्पत्ति शोभा प्रकाशी॥२१॥
चिरंजीव संयोग योगी अरोगी। सदा एक पत्नीव्रती भोग भोगी।
सबै शील सौंदर्य सौगंध धारी। सबै ब्रह्मज्ञानी गुणी धर्मचारी॥२२॥

सबै न्हान दानादि कर्म्माधिकारी । सबै चित्त चातुर्य्य चिंता प्रमारी ॥
सबै पुत्र पौत्रादि के सुक्ख साजें । सबै भक्त माता पिता के विराजें ॥२३॥

सबै सु दरी सु दरी साधु सोहैं । शची सी सती सी जिन्हें देखि मोहैं ॥
सबै प्रेम की पुण्य की सद्मिनी सी । सबै चित्रिणी पुत्रिणी पद्मनीसी ॥२४॥

शब्दार्थ–(राम के राज्य मे) पूरे=युक्त, पूर्ण । क्षमी=क्षमता-पूर्ण । सयोग-योगी=स्त्री संयोग से युक्त । सौगंध=सुगंधित । चित्त चातुर्य्य चिंता प्रहारी=अपने चित्त के कौशल से दूसरे की चिन्ताओं को नष्ट करने वाले । सुन्दरी सुन्दरी=स्त्रियां सुन्दर हैं । साधु=साध्वी, शील-वती । सती =दक्षकन्या । सद्मिनी=आगार, भडार । चित्रिणी, पद्मनी= स्त्रियो की जातियां । पुत्रिणी=पुत्रवती ।

भावार्थः—सरल एवं स्पष्ट है ।

होम धूम मलिनाई जहां । अलि चंचल चलदल हैं तहां ॥
बाल-नाश है चूड़ा कर्म्म । तीक्षणता आयुध के धर्म्म ॥२५॥

लेत जनेऊ भिक्षा दानु । कुटिल चाल सरितानु वखानु ॥
व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै । कोकिलकुल पुत्र परिहरै ॥ २६ ॥

फागुहि मिलज लोग देखिए । जुवा देवारी कौ खेलिए ॥
नित उठि बेझोई मारिए । खेलत में केहूँ हारिए ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—चलदल=पीपल के पत्ते । बाल=(१) केश (२) बालक । चूड़ाकर्म=हजामत । आयुध=शस्त्र । द्विज=विद्यार्थी । वृत्ति=(१) जीविका, (२) सूत्र का अर्थ । बेझोई=लक्ष्य । केहूँ=किसी प्रकार ।

भावार्थ—राम के राज्य में केवल होम के धुएँ की ही मलिनता है और कोई मलिनता नही, चचलना केवल पीपल के पत्तो में ही है । राम राज्य में बाल नाश (बालको की मृत्यु) नही होती केवल हजामत में ही (केश) नाश होता है, और वहाँ तीक्ष्णता केवल शस्त्रो का ही धर्म है कोई तीक्ष्ण स्वभाव वाला नही है ।

को ही जलाते हैं । यहां कोई किसी को बाँधता नहीं, केवल तड़ाग ही बाँधे जाते हैं और केवल दारिद्र्य कि ही मारा जाता है । यदि युद्ध जीतना हुआ तो लोग रामनाम के प्रभाव से जगत को ही जीतते हैं और हारना हुआ तो केवल अन्य जन्म ही हारते हैं अर्थात् मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

अलंकार:—परिसंख्या ।

सब के कल्पद्रुम के बन हैं, सबके बर वारन गाजत हैं ।
सब के घर शोभित देवसभा, सब के जय दुन्दुभि बाजत हैं ।
निधि सिद्धि विशेष अशेषनि सों, सब लोग सबै सुख साजत हैं ।
कहि केशव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥२९॥

शब्दार्थ:—कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष । बरवारन=श्रेष्ठ हाथी । शोभित देव सभा=पूजनार्थ विविध देवता स्थापित हैं । अशेषनि=सम्पूर्ण । सुरराज=इन्द्र । राजत हैं=शोभित हैं ।

भावार्थ—स्पष्ट है ।

दंडक छंद:—जूझहि में कलह, कलह प्रिय नारदै,
कुरूप है कुबेरै, लोभ सब के चयन को ।
पापन की हानि, डर गुरुन को, बैरी काम,
आगि सर्वभक्षी, दुखदायक अयन को ।
विद्या ही में वादु, बहुनायक है वारिनिधि,
जारज है हनुमत, मीत उदयन को ।
आंखिन अछत अंध, नारिकेर कृश कटी,
ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को ॥३०॥

शब्दार्थ:—जूझहि में=युद्ध में ही । चयन=चैन, आनन्द । अयन=घर । वादु=वाद विवाद । बहुनायक=बहुत सी स्त्रियों का पति । वारिनिधि=समुद्र । जारज=दोगला । मीत उदयन को=सबके विकास (उत्थान) का इच्छुक । अछत=होते हुए । नारि-केर=नारियल । कृश=क्षीण ।

दोहा:—दशसहस्त्र दस सै बरस, रसा बसी यहि साज।
स्वर्ग नर्क के मग थके, रामचन्द्र के राज॥ ३३॥

भावार्थ—राम चन्द्र के राज्य काल में यह पृथ्वी ग्यारह हजार वर्ष तक इसी प्रकार बसती रही और स्वर्ग नर्क के सारे मार्ग रुक गए, अर्थात् कोई मरा ही नहीं, वरन् सब मुक्ति को प्राप्त हुए।

(इतिशुभम्)

मुद्रक:—राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस, अलवर।